चतुर्थ अध्याय

आधुनिक हिंदी साहित्यकृतियों का फिल्मांकनःएक अवलोकन

4.0 भूमिका

4.1 हिंदी साहित्य पर आधारित हिंदी फिल्में

4.1.1 हिंदी उपन्यासों पर आधारित हिंदी फिल्में

4.1.1.1 'गोदान' का फिल्मांकन

4.1.1.2 'सेवासदन' का फिल्मांकन

4.1.1.3 'रंगभूमि' का फिल्मांकन

4.1.1.4 'गबन' का फिल्मांकन

4.1.1.5 'डाक बंगला' का फिल्मांकन

4.1.1.6 'काली आँधी' पर बनीं फिल्म 'आँधी'

4.1.1.7 'आगामी अतीत' पर आधारित फिल्म 'मौसम'

4.1.1.8 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' पर बनी फिल्म 'बदनाम बस्ती'

4.1.1.9 'आपका बंटी' पर बनी फिल्म 'समय की धारा'

4.1.1.10 'सारा आकाश' का फिल्मांकन

4.1.1.11 'चित्रलेखा' का फिल्मांकन

4.1.1.12 'धर्मपुत्र' का फिल्मांकन

4.1.1.13 'त्यागपत्र' का फिल्मांकन

4.1.1.14 'अठारह सूरज के पौधे' पर आधारित फिल्म 'सत्ताईस ड़ाउन'

4.1.1.15 'कोहबर की शर्त' पर बनी फिल्म 'नदिया के पार'

4.1.1.16 'तमस' का फिल्मांकन

4.1.1.17 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' का फिल्मांकन

4.1.1.18 'नौकर की कमीज' का फिल्मांकन

4.1.2 हिंदी कहानियों पर आधारित हिंदी फिल्में
4.1.2.1 'दो बैलों की कथा' पर आधारित हिंदी फिल्म 'हीरा मोती'
4.1.2.2 'शतरंज के खिलाड़ी' का फिल्मांकन
4.1.2.3 'सद्‌गति' का फिल्मांकन
4.1.2.4 'उसकी रोटी' का फिल्मांकन
4.1.2.5 'तलाश' पर बनी फिल्म 'फिर भी'
4.1.2.6 'पति, पत्नी और वह' पर आधारित फिल्म 'रंग बिरंगी'
4.1.2.7 'उसने कहा था' का फिल्मांकन
4.1.2.8 'तीसरी कसम' का फिल्मांकन
4.1.2.9 'माया दपर्ण' का फिल्मांकन
4.1.2.10 'यही सच है'का फिल्मी रूपांतरण 'रजनीगंधा'
4.1.2.11 'तिरिया चरित्तर' पर आधारित फिल्म 'त्रिया चरित्र'
4.1.2.12 'पतंग' का फिल्मांकन
4.1.2.13 'एक और पंचवटी' पर आधारित फिल्म 'पंचवटी'
4.1.2.14 'सतह से उठता आदमी' का फिल्मांकन
4.1.2.15 'फाल्गुन की एक उपकथा' पर बनी फिल्म 'अनवर'
4.1.2.16 'मोहनदास' का फिल्मांकन
4.1.3 हिंदी नाटकों पर आधारित हिंदी फिल्में
4.1.3.1 'भाग्यचक्र' पर आधारित फिल्म 'धूपछाँव'
4.1.3.2 'आषाढ़ का एक दिन' का फिल्मांकन
4.2 निष्कर्ष

चतुर्थ अध्याय

आधुनिक हिंदी साहित्यकृतियों का फिल्मांकन : एक अवलोकन

4.0 भूमिकाः

भारतीय सिनेमा ने अपने शानदार सौ साल पूरे किए है । हमारे देश में हर साल औसतन एक हजार फिल्में बनती हैं । जिसमें हिंदी फिल्मों की संख्या करीबन एक सौ तीस है। ''नंबर्स में अगर देखेंगे तो सबसे ज्यादा फिल्में तेलगू में बनती हैं । हिंदी में जितनी बनती है उसके डबल तेलगू में बनती हैं । तेलगू के बाद तमिल और मल्यायम में । इन तीन लैंग्वेजेस में अस्सी प्रतिशत फिल्में बनती हैं । हिंदी में उसके बाद बनती है । इन द लार्ज नंबर एक सौ बीस या एक सौ तीस फिल्में हिंदी में बनती हैं ।''[1]

अब सोचनेवाली बात यह है कि इनमें हिंदी साहित्यकृतियों पर आधारित कितनी फिल्में होती है ? उत्तर न के बराबर है । हमारे वर्तमान हिंदी फिल्म निर्देशकों को हिंदी साहित्य से परहेज क्यों है ? क्यों नहीं उनका ध्यान साहित्य की ओर जाता ? क्या हिंदी साहित्यकृतियों में फिल्मांकन की सम्भावनाएँ उन्हें नजर नहीं आती ? ''यह कल्पना से परे है कि हिंदी सहित भारत के ड़ेढ़ दर्जन से अधिक अधिसूचित भाषाओं में बिखरे पड़े विपुल साहित्य में अच्छी कहानियों की कमी हैं । कमी कहीं है तो उन कहानियों की तरफ सिनेमा को जाने की । केवल हिंदी की बात करें तो कहानियों का एक विशाल महासागर लहलहा रहा है । फिर भी अगर कुछ नाम गिनाना ही हो तो निर्मल वर्मा, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, ज्ञानरंजन, काशिनाथ सिंह, दूधनाथ सिंह, चित्रा मुद्‌गल, उदय प्रकाश, प्रियंवद, स्वयंप्रकाश, नासिरा शर्मा, संजीव, अमरकान्त, असगर वजाहत, अब्दुल बिस्मिल्लाह, हृदयेश, शिवमूर्ति, शानी, मंजूर एहतेशाम, मैत्रयी पुष्पा, उषा प्रियंवदा, रमेश उपाध्याय, अशोक भौमिक, अखिलेश, पंकज बिस्ट, महेश दर्पण, बलराम, महेश कटारे आदि सैकड़ो हिंदी कथाकारों की कहानियों में अच्छी पटकथाओं की गुंजाइश मिलेगी । जरूरत है सिनेमा को साहित्य की तरफ अपना हाथ बढ़ाने की और

साहित्य को उस हाथ में अच्छी कहानी देने की ।''[2] हमारा हिंदी साहित्य और भारतीय साहित्य इतना समृध्द होने पर भी समकालीन फिल्मकारों का ध्यान इसकी ओर क्यों नहीं जाता । या तो वे साहित्य नहीं पढ़ते है, और अगर पढ़ते भी है तो साहित्य कृतियों पर आधारित फिल्म बनाने से बचना चाहते है । हिंदी साहित्य के प्रति फिल्मकारों की इतनी उदासिनता क्यों है, यह भी एक गंभीरता से सोचनेवाली बात है ।

कहने का तात्पर्य यह है कि बहुत बड़ी संख्या में हमारे यहाँ हिंदी साहित्यकृतियों का फिल्मांकन नहीं हुआ है । ''हिंदी सिनेमा ने प्रारंभ से ही साहित्य और विशेष रूप से हिंदी कथा साहित्य के प्रति उपेक्षा का रवैया अपनाया, जो न्यूनाधिक रूप से अभी तक बदला नहीं है ।''[3] इस कारण हम देखते है कि सिनेमा के इन सौ सालों में हिंदी साहित्यकृतियों पर बनी हिंदी फिल्मों की संख्या पचास से ज्यादा नहीं है, जब कि इन सौ सालों में हिंदी में पाँच हजार से भी ज्यादा फिल्मे बनी हैं । इससे हम आसानी से अंदाजा लगा सकते है कि हिंदी फिल्मों में हिंदी साहित्य को कितनी जगह मिल पाई है ।

हिंदी साहित्यकृतियों के अलावा हिंदी फिल्म निर्देशकों ने बांग्ला साहित्य, उर्दू साहित्य, मराठी साहित्य, संस्कृत साहित्य, कन्नड साहित्य, गुजराती साहित्य, राजस्थानी साहित्य, पंजाबी साहित्य, उडिया साहित्य और अंग्रेजी साहित्य कृतियों पर भी फिल्में बनाई हैं । तकरीबन 66 हिंदी फिल्में बांग्ला साहित्य पर आधारित है । 09 उर्दू साहित्य कृति पर आधारित हैं । 13 हिंदी फिल्में मराठी साहित्य कृतियों पर बनीं हैं । 02 संस्कृत, 03 कन्नड, 02 गुजराती, 04 राजस्थानी, 01 पंजाबी, 01 उडिया साहित्य पर आधारित हैं । अंग्रेजी साहित्य कृतियों पर 19 फिल्में हिंदी में बनाई गई हैं ।

जानकारी के लिए यहाँ हम हिंदी और हिंदीतर साहित्यकृतियों पर बनी हिंदी फिल्मों की सूची निम्न रूप से देखेंगे-

- **हिंदी साहित्य पर आधारित हिंदी फिल्में :**

इसके अंतर्गत हम हिंदी उपन्यास, कहानी और नाटक पर आधारित हिंदी फिल्मों की सूची देखेंगे-

1) हिंदी उपन्यासों पर आधारित हिंदी फिल्में :

अनु.क्र	**हिंदी उपन्यास**	**हिंदी फिल्म**	**उपन्यास लेखक**	**फिल्म निर्देशक**	**फिल्म रिलिज वर्ष**
1	सेवासदन	सेवासदन	प्रेमचंद	नानूभाई वकील	1934
2	रंगभूमि	रंगभूमि	प्रेमचंद	भवनानी प्रोडक्शन	1946
3	गोदान	गोदान	प्रेमचंद	त्रिलोक जेटली	1963
4	गबन	गबन	प्रेमचंद	कृष्ण चोपडा/ ऋषिकेश मुखर्जी	1966
5	डाक बंगला	डाक बंगला	कमलेश्वर	गिरीश रंजन	1974
6	काली आँधी	आँधी	कमलेश्वर	गुलजार	1975
7	आगामी अतीत	मौसम	कमलेश्वर	गुलजार	1975
8	एक सडक सत्तावन गलियाँ	बदनाम बस्ती	कमलेश्वर	प्रेम कपूर	-
9	आपका बंटी	समय की धारा	मन्नू भंडारी	शिशिर मिश्र	1986
10	सारा आकाश	सारा आकाश	राजेन्द्र यादव	बासु चटर्जी	1969
11	चित्रलेखा	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	किदार शर्मा	1965
12	धर्मपुत्र	धर्मपुत्र	आ.चतुरसेन शास्त्री	यश चोपडा	1961
13	त्यागपत्र	त्यागपत्र	जैनेन्द्र कुमार	रमेश गुप्ता	1961
14	अठारह सूरज के पौधे	सत्ताईस डाऊन	रमेश बक्शी	अवतार कौल	1974

15	कोहबर की शर्त	नदीया के पार	केशव प्रसाद मिश्र	गोविंद मूनिस	1982
16	तमस	तमस	भीष्म साहनी	गोविंद निहलानी	1988
17	सूरज का सातवाँ घोड़ा	सूरज का सातवाँ घोड़ा	धर्मवीर भारती	श्याम बेनेगल	1992
18	नौकर की कमीज	नौकर की कमीज	विनोद कुमार शुक्ल	बासु भट्टाचार्य	1999

2) हिंदी कहानियों पर आधारित हिंदी फिल्में :

अनु.क्र	हिंदी कहानी	हिंदी फिल्म	कहानी लेखक	फिल्म निर्देशक	फिल्म रिलिज वर्ष
1	दो बैलों की कथा	हीरा मोती	प्रेमचंद	कृष्ण चोपडा	1959
2	शतरंज के खिलाड़ी	शतरंज के खिलाड़ी	प्रेमचंद	सत्यजित रे	1977
3	सद्‌गति	सद्‌गति	प्रेमचंद	सत्यजिर रे	1981
4	तलाश	फिर भी	कमलेश्वर	शिवेन्द्र सिन्हा	-
5	पति, पत्नी और वह	रंग बिरंगी	कमलेश्वर	ऋषिकेश मुखर्जी	1983
6	उसकी रोटी	उसकी रोटी	मोहन राकेश	मणि कौल	1969
7	उसने कहा था	उसने कहा था	चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी'	मोनी भट्टाचार्य	1960
8	मारे गए गुलफाम उर्फ तीसरी कसम	तीसरी कसम	फणीश्वरनाथ रेणु	बासु भट्टाचार्य	1967
9	माया दर्पण	माया दर्पण	निर्मल वर्मा	कुमार साहनी	1972
10	यही सच है	रजनीगंधा	मन्नू भंडारी	बासु चटर्जी	-
11	एँखाने आकाश नाई	जीना यहाँ	मन्नू भंडारी	बासु चटर्जी	-
12	तिरीया चरित्तर	तिरिया चरित्र	शिवमूर्ति	बासु चटर्जी	1994
13	किराए की कोख	कोख	आलमशाह खान	आर.एस.विकल	1994
14	पतंग	पतंग	संजय सहाय	गौतम घोष	1993
15	कोलंबस जिंदा है	साथ-साथ	नरेंद्र मौर्य	रमण कुमार	1982
16	एक और पंचवटी	पंचवटी	कुसुम अंसल	बासु भट्टायार्च	1986

17	सतह से उठता आदमी	सतह से उठता आदमी	मुक्तिबोध	मणि कौल	1981
18	फाल्गुन की एक उपकथा	अनवर	प्रियंवद	मनिष झा	2007
19	मोहनदास	मोहनदास	उदय प्रकाश	मजहर कामरान	2009
20	अतिथि तुम कब जाओगे	अतिथि तुम कब जाओगे	शरद जोशी	अश्वीनी धीर	2010

3) हिंदी नाटकों पर आधारित हिंदी फिल्में :

अनु.क्र	**हिंदी नाटक**	**हिंदी फिल्म**	**नाटक लेखक**	**फिल्म निर्देशक**	**फिल्म रिलिज वर्ष**
1	भाग्यचक्र	धूपछाँव	पं.सुदर्शन	नितिन बोस	1935
2	आषाढ़ का एक दिन	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	मणि कौल	1971
3	आधे-अधूरे	आधे-अधूरे	मोहन राकेश	बासु भट्टाचार्य	-

- **हिंदीतर साहित्य पर आधारित हिंदी फिल्में :**

इसके अंतर्गत हम बांग्ला, उर्दू, मराठी, संस्कृत, कन्नड, गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी, उड़िया और अंग्रेजी साहित्य कृतियों पर आधारित हिंदी फिल्मों की सूची देखेंगे-

1) बांग्ला साहित्यकृतियों पर आधारित हिंदी फिल्में :

अनु.क्र	**बांग्ला साहित्यकृति**	**हिंदी फिल्म**	**साहित्यकृति लेखक**	**फिल्म निर्देशक**
1	चोखेरबाली	चोखेरबाली	रवीन्द्रनाथ टैगोर	ऋतुपर्ण घोष
2	नौका डूबी	घूँघट	रवीन्द्रनाथ टैगोर	रामानंद सागर
3	समाप्ति	उपहार	रवीन्द्रनाथ टैगोर	सुधेन्दु राय
4	काबुलीवाला	काबुलीवाला	रवीन्द्रनाथ टैगोर	हेमेन गुप्ता
5	डाकघर	डाकघर	रवीन्द्रनाथ टैगोर	जुल वेलानी
6	चार अध्याय	चार अध्याय	रवीन्द्रनाथ टैगोर	कुमार साहनी

7	अतिथि	गीत गाता चल	रवीन्द्रनाथ टैगोर	हीरेन नाग
8	रजनी	रजनी	रवीन्द्रनाथ टैगोर	नितिन बोस
9	आनन्द मठ	आनन्द मठ	बंकिमचन्द्र चटर्जी	हेमेन गुप्ता
10	दुर्गेश नंदिनी	दुर्गेश नंदिनी	बंकिमचन्द्र चटर्जी	नंदलाल जायसवाल
11	कपाल कुंडला	कपाल कुंडला	बंकिमचन्द्र चटर्जी	फणि मजुमदार
12	देवदास	देवदास	शरतचन्द्र चटर्जी	प्रथमेश बरूवा
13	देवदास	देवदास	शरतचन्द्र चटर्जी	बिमल राय
14	देवदास	देवदास	शरतचन्द्र चटर्जी	संजय लीला भंसाली
15	परिणीता	परिणीता	शरतचन्द्र चटर्जी	बिमल राय
16	परिणीता	परिणीता	शरतचन्द्र चटर्जी	प्रदीप सरकार
17	बिराज बहू	बिराज बहू	शरतचन्द्र चटर्जी	बिमल राय
18	बैकुंठेर विल	सौतेला भाई	शरतचन्द्र चटर्जी	महेश कौल
19	-	मंझली दीदी	शरतचन्द्र चटर्जी	हृषिकेश मुखर्जी
20	पण्डित मोशाय	खुशबू	शरतचन्द्र चटर्जी	गुलजार
21	-	स्वामी	शरतचन्द्र चटर्जी	बासु चटर्जी
22	दर्पचूर्ण	जेवर	शरतचन्द्र चटर्जी	बासु चटर्जी
23	निशिकीर्ति	अपने पराए	शरतचन्द्र चटर्जी	बासु चटर्जी
24	बिन्दुर छेले	छोटी माँ	शरतचन्द्र चटर्जी	चित्त बोस
25	फॉसिल	अनजान घर	सुबोध घोष	बिमल राय
26	आत्मजा	सुजाता	सुबोध घोष	बिमल राय
27	गोत्रांत	एक अधूरी कहानी	सुबोध घोष	मृणाल सेन
28	चित्तचोर	चितचोर	सुबोध घोष	बासु चटर्जी
29	जुतु गृह	इजाजत	सुबोध घोष	गुलजार
30	पथिक	किताब	समरेश बसु	गुलजार

31	अकाल वसंत	नमकीन	समरेश बसु	गुलजार
32	रामनाम केवलन्	शौकीन	समरेश बसु	बासु चटर्जी
33	पाड़ी/पारहिं	पार	समरेश बसु	गौतम घोष
34	छुटीर फांदे	सफेद झूठ	समरेश बसु	बासु चटर्जी
35	भुवनशोम	भुवनशोम	बनफूल	मृणाल सेन
36	अर्जुन पंडित	अर्जुन पंडित	बनफूल	हृषिकेश मुखर्जी
37	सेई मेयेरा	वो छोकरी	बनफूल	शुभंकर घोष
38	-	गुडिया	महाश्वेता देवी	गौतम घोष
39	1084 की माँ	1084 की माँ	महाश्वेता देवी	गोविंद निहलानी
40	-	एक पल	महाश्वेता देवी	कल्पना लाजमी
41	-	रूदाली	महाश्वेता देवी	कल्पना लाजमी
42	-	माँ	स्वराज बंद्योपाध्याय	बिमल राय
43	-	कमला की मौत	स्वराज बंधोपाध्याय	बासु चटर्जी
44	साहिब बीबी गुलाम	साहिब बीबी गुलाम	विमल मित्र	अबरार अल्वी
45	बीज	एक दिन अचानक	रमापद चौधरी	मृणाल सेन
46	रंगीन उत्तरायण	परिचय	राजकुमार मित्र	गुलजार
47	तेलेना पोत्ता आविष्कार	खंडहर	प्रेमेन्द्र मिश्र	मृणाल सेन
48	-	सत्यकाम	नारायण सान्याल	हृषिकेश मुखर्जी
49	-	चमेली की शादी	नारायण सान्याल	बासु चटर्जी
50	-	बाघ बहादुर	प्रफुल्ल राय	बुद्धदेव दासगुप्त
51	लौह कपाट	बंदिनी	जरासंध	बिमल राय
52	केमेस्ट्रहीओ कहानी	दिल्लगी	विमल कर	बासु चटर्जी

53	-	मंजिल	आशीष बर्मन	बासु चटर्जी
54	-	आकाश कुसुम	आशीष बर्मन	मृणाल सेन
55	-	महार्जली यात्रा	कमलकुमार मजूमदार	गौतम घोष
56	घर-बाड़ी	अंधी गली	दिव्येन्दु पालित	बुद्धदेव दासगुप्त
57	गरम भात	शोध	सुनील बंद्योपाध्याय	विप्लव राय चौधुरी
58	रत्नदीप	रत्नदीप	प्रभात कुमार मुखर्जी	बासु चटर्जी
59	रास	सौदागर	नरेन्द्रनाथ मित्र	सुधेन्दु राय
60	-	तृषाग्नि	शरदेंदु बंद्योपाध्याय	नवेंदु घोष
61	एतो टु कु बासा	हमारी बहू अलका	मनोज बसु	बासु चटर्जी
62	मान-अपमान	शीशा	शंकर	बासु चटर्जी
63	-	ममता	नीहार रंजन गुप्त	असित सेन
64	-	उत्तर फाल्गुनी	नीहार रंजन गुप्त	असित सेन
65	दीप जोले	खामोशी	आशुतोष मुखोपाध्याय	असित सेन
66	आपन जन	मेरे अपने	इन्द्र मित्र	गुलजार

2) उर्दू साहित्यकृतियों पर आधारित हिंदी फिल्में :

अनु.क्र	उर्दू साहित्यकृति	हिंदी फिल्म	साहित्यकृति लेखक	फिल्म निर्देशक
1	औरत की फितरत	स्वामी	प्रेमचंद	अब्दुल रशीद कारदार
2	एक चादर मैली-सी	एक चादर मैली-सी	राजिंदर सिंह बेदी	सुखवंत ढांडा
3	दस्तक	दस्तक	राजिंदर सिंह बेदी	राजिंदर सिंह बेदी

4	यहाँ से शहर को देखो	यहां से शहर को देखो	कृष्ण चंदर	कृष्ण चंदर
5	आनंदी	मंडी	हसन अब्बास	श्याम बेनेगल
6	पैसा	पैसा	इंदरराज आनंद	पृथ्वीराज कपूर
7	उमराव जान अदा	उमराव जान	मिर्जा हादी रूसवा	मुजफ्फर अली
8	दिल ही तो है	अचानक	ख्याजा अहमद अब्बास	गुलजार
9	सराय के बाहर	सराय के बाहर	कृष्ण चंदर	कृष्ण चंदर

3) मराठी साहित्यकृतियों पर आधारित हिंदी फिल्में :

अनु.क्र	मराठी साहित्यकृति	हिंदी फिल्म	साहित्यकृति लेखक	फिल्म निर्देशक
1	चक्र	चक्र	जयवंत दलवी	रोबिन धर्मराज
2	मुंबईचा जावई	पिया का घर	व.पु.काळे	बासु चटर्जी
3	सांगत्ये ऐका	भूमिका	हंसा वाडेकर	श्याम बेनेगल
4	-	दृष्टि	शशि देशपांडे	गोविंद निहलानी
5	पार्टी	पार्टी	महेश एलकुंचवार	गोविंद निहलानी
6	सूर्य	अर्ध्दसत्य	एस.डी.पनवलकर	गोविंद निहलानी
7	-	आक्रोश	विजय तेंडुलकर	गोविंद निहलानी
8	-	निशांत	विजय तेंडुलकर	श्याम बेनेगल
9	घासीराम कोतवाल	घासीराम कोतवाल	विजय तेंडुलकर	मणि कौल
10	-	होली	महेश एलकुंचवार	केतन मेहता
11	-	अनकही	सी.टी.खानोलकर	
12	बैरिस्टर	राव साहब	जयवंत दलवी	विजया मेहता
13	-	दो रास्ते	चंद्रकांत काकोडकर	राज खोसला

4) संस्कृत साहित्यकृतियों पर आधारित हिंदी फिल्में :

अनु.क्र.	संस्कृत साहित्यकृति	हिंदी फिल्म	साहित्यकृति लेखक	फिल्म निर्देशक
1	मृच्छकटिकम्	उत्सव	शूद्रक	गिरीश कर्नाड
2	-	चिरूथा	शूद्रक	तनवीर अहमद

5) कन्नड साहित्यकृतियों पर आधारित हिंदी फिल्में :

अनु.क्र.	कन्नड साहित्यकृति	हिंदी फिल्म	साहित्यकृति लेखक	फिल्म निर्देशक
1	हमसा गीते	वसन्त बहार	तारा सू	वसंत जोगलेकर
2	-	गोधूली	तारा सू	गिरीश कर्नाड
3	घटश्राध्द	दीक्षा	यू.आर.अनन्तमूर्ति	अरूण कौल

6) गुजराती साहित्यकृतियों पर आधारित हिंदी फिल्में :

अनु.क्र.	गुजराती साहित्यकृति	हिंदी फिल्म	साहित्यकृति लेखक	फिल्म निर्देशक
1	सरस्वतीचंद्र	सरस्वतीचंद्र	गोवर्ध्दन राम त्रिपाठी	गोविंद सरैया
2	-	पृथ्वी वल्लभ	के.एम.मुंशी	सोहराब मोदी

7) राजस्थानी साहित्यकृतियों पर आधारित हिंदी फिल्में :

अनु.क्र.	राजस्थानी साहित्यकृति	हिंदी फिल्म	साहित्यकृति लेखक	फिल्म निर्देशक
1	दुविधा	दुविधा	विजयदान देथा	मणि कौल
2	दुविधा	पहेली	विजयदान देथा	अमोल पालेकर
3	परिणति	परिणति	विजयदान देथा	प्रकाश झा

4	राजस्थानी लोककथा	तर्पण	-	के.बिक्रम सिंह

8) पंजाबी साहित्यकृति पर आधारित हिंदी फिल्म :

अनु.क्र.	पंजाबी साहित्यकृति	हिंदी फिल्म	साहित्यकृति लेखक	फिल्म निर्देशक
1	पिंजर	पिंजर	अमृता प्रितम	चन्द्रप्रकाश द्विवेदी

9) उड़िया साहित्यकृति पर आधारित हिंदी फिल्म :

अनु.क्र.	उड़िया साहित्यकृति	हिंदी फिल्म	साहित्यकृति लेखक	फिल्म निर्देशक
1	शिकार	मृगया	भगवतीचरण पाणीग्रही	मृणाल सेन

10) अंग्रेजी साहित्यकृतियों पर आधारित हिंदी फिल्में :

अनु.क्र.	अंग्रेजी साहित्यकृति	हिंदी फिल्म	साहित्यकृति लेखक	फिल्म निर्देशक
1	गाइड	गाइड	आर.के.नारायण	विजय आनन्द
2	फ्लाइट ऑफ पिजन्स	जुनून	रस्किन बॉण्ड	श्याम बेनेगल
3	इन कस्टडी	मुहाफिज	अनिता देसाई	इस्माइल मर्चेंट
4	-	देहम्	मंजुला पद्मनाभन	गोविंद निहलानी
5	लिटिल पॉल्फ	जजीरें	इब्सन	गोविंद निहलानी
6	हाऊस ऑफ बर्नाडा अल्बा	रूक्मावती की हवेली	लोर्का	गोविंद निहलानी
7	द फादर	पिता	स्टींटबर्ग	गोविंद निहलानी
8	टू लीव्स एण्ड ए बर्ड	राही	मुल्कराज आनंद	ख्वाजा अहमद अब्बास
9	वूदरिंग हाइट्स	दिल दिया दर्द लिया	-	ए.आर.कारदार
10	एण्ड वन डिड नॉट कम बैक	डॉ. कोटनीस की अमर कहानी	ख्वाजा अहमद अब्बास	वी.शांताराम

11	द लोअर डेफ्थ	नीचा नगर	मेक्सिम गोर्की	चेतन आनंद
12	द ओवरकोट	गरम कोट	गोगोल	अमर कुमार
13	क्राइम एण्ड पनिशमेंट	फिर सुबह होगी	फ्योदोर दॉस्ताएवस्की	रमेश सहगल
14	मैकबेथ	मकबूल	शेक्सपियर	विशाल भारद्वाज
15	ऑथेल्लो	ओमकारा	शेक्सपियर	विशाल भारद्वाज
16	द ब्ल्यू अंब्रेला	द ब्ल्यू अंब्रेला उर्फ छतरी चोर	रस्किन बॉण्ड	विशाल भारद्वाज
17	सुसान्नाज सेवेन हसबेंड	सात खून माफ	रस्किन बॉण्ड	विशाल भारद्वाज
18	व्हाइट नाईट्स	सांवरिया	फ्योदोर दास्ताएवस्की	संजय लीला भंसाली
19	टू स्टेटस्	टू स्टेटस्	चेतन भगत	अभिषेक वर्मन

इस तरह हम देखते हैं कि हिंदीतर साहित्यकृतियों पर हिंदी में अब तक 120 फिल्में बनी हैं । और अब तक हिंदी की 41 साहित्यकृतियों का हिंदी में फिल्मांकन हुआ है । यह सूची अंतिम नहीं है । शायद इसमें और जोड़ने की जरूरत पड़े । मेरे अध्ययन में अब तक इतनी ही फिल्में आयी है ।

खैर, अब देखना यह है कि हिंदी साहित्यकृतियों पर बनी हिंदी फिल्मों का कितना सफल और सार्थक फिल्मांकन हुआ है । फिल्म निर्देशकों ने साहित्यविधा को फिल्म विधा में किस तरह रूपांतरीत किया है । साहित्यकृतियों के फिल्मांकन में वे सफल रहे या असफल ? यह जानने के लिए हम हिंदी की सुप्रसिध्द साहित्यकृतियों पर बनी फिल्मों का विवेचन-विश्लेषण यहाँ करेंगे । जिससे यह पता चलेगा कि फिल्म निर्देशकों ने साहित्यिक कृति की आत्मा के साथ न्याय किया है या उसके साथ जाने-अनजाने में खिलवाड़ किया है ।

4.1 हिंदी साहित्य पर आधरित हिंदी फिल्में :

हिंदी साहित्य पर आधारित फिल्मों में हम हिंदी उपन्यास, हिंदी कहानी और हिंदी नाटक पर आधारित हिंदी फिल्मों का विवेचन-विश्लेषण करेंगे ।

4.1.1 हिंदी उपन्यासों पर आधारित हिंदी फिल्में :

हिंदी साहित्य में आज तक कई हजार की संख्या में उपन्यास लिखे गये हैं । और उपन्यास लेखन का यह सिलसिला जारी है । इस अनुपात में अगर देखा जाए तो अब तक केवल अठारह हिंदी उपन्यासों का फिल्मांकन हुआ है । शायद इसकी संख्या दो-चार से और बढ़ भी जाए क्योंकि अनुसंधान के समय जितनी फिल्में नजर में आयी उतनी ही फिल्मों का जिक्र यहाँ किया जा रहा है । स्पष्ट है कि उपन्यास पर बननेवाली फिल्मों की संख्या बहुत ही कम है । अब यह संख्या इतनी कम क्यों है इसके विवाद में न पड़ते हुए हम यहाँ देखेंगे कि हिंदी उपन्यासों पर आधारित हिंदी फिल्म का कितना सफल या असफल फिल्मांकन हुआ है । उपन्यास विधा को फिल्म विधा में कितना न्याय मिला है । उपन्यास के फिल्मी रूपांतरण में किस तरह के परिवर्तन किए गए क्या वे फिल्म के अनुकूल थे या व्यावसायिक दबाव में किए गए । उपन्यास की मूल आत्मा को पकड़ने में कितने फिल्म निर्देशक सफल रहे । हिंदी उपन्यासों पर बनीं हिंदी फिल्मों का अवलोकन हम यहाँ करेंगे ।

4.1.1.1 'गोदान' का फिल्मांकन :

हिंदी उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद का 'गोदान' उपन्यास केवल उन्हीं का ही नहीं हिंदी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना जाता है । भारतीय किसान और ग्रामीण जीवन का यह महत्वपूर्ण दस्तावेज है । इसे अपार लोकप्रियता मिली । देश के कई विश्वविद्यालयों ने इसे अपने पाठ्यक्रम में शामिल भी किया । इसपर अनुसंधान भी हुआ और वर्तमान समय में भी हो रहा है । यह उपन्यास प्रासंगिक है ।

फिल्म निर्देशक त्रिलोक जेटली ने सन् 1963 ई.में प्रेमचंद के 'गोदान' पर आधारित इसी नाम से 'गोदान' फिल्म बनाई । यह फिल्म 'ब्लॅक एण्ड व्हाइट' थी । 'गोदान' फिल्म गोदान उपन्यास का अच्छा फिल्मांकन नहीं कहा जा सकता । ''फिल्म उपन्यास की आत्मा को पकड़ पाने में सर्वथा असफल रही है । इसकी पटकथा ही इतनी कमजोर है कि पूरी फिल्म बेहद उबाऊ हो गई है । श्री जेटली ने जिस प्रकार उपन्यास को पटकथा का रूप दिया है

उससे वह न केवल विकृत हो गया है बल्कि उसकी रोचकता भी जाती रही है । जहाँ गोदान उपन्यास पठनीयता की कसौटी पर भी खरा उतरता है वहाँ फिल्म में कथा का प्रवाह बहुत ही मंथर है । फिल्म में घटनाओं से लेकर चरित्रांकन तक सब कुछ बिल्कुल निष्प्राण लगता है । फिल्म देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे निर्देशक फिल्मांकन के मूल सिध्दांत से परिचित ही नहीं है ।''[4]

ऐसा लगता है कि निर्देशक प्रेमचंद के गोदान को ठीक से समझ ही नहीं पाया है । इस कारण उपन्यास के मुख्य पात्रों को भी उसने इतना बदल दिया है कि उन्हें पहचानना मुश्किल हो गया है । उपन्यास के होरी और धनिया और फिल्म के होरी और धनिया में बहुत अंतर दिखाई देता है । अतः यह कहने में हिचक महसूस नहीं होती की गोदान जैसे महान उपन्यास पर निर्देशक त्रिलोक जेटली ने एक बहुत ही साधारण किस्म की फिल्म बनाई है । जो प्रेमचंद जैसे महान लेखक की महान कृति के साथ सरासर अन्याय ही है । फिल्म की भाषा की ओर भी निर्देशक ने ध्यान नहीं दिया है, लेकिन संवादों में देहातीपन झलकता है । गीत-संगीत इस फिल्म का प्रबल पक्ष कहा जा सकता है । इसमें लोकसंगीत इस्तेमाल किया गया है। फिल्म के पूरे वातावरण के मध्यनजर लोकधुनों का प्रयोग इसकी विशिष्टता है ।

संक्षेप में केवल इतना ही कहा जा सकता हैं कि 'गोदान' जैसी महान साहित्यकृति गलत निर्देशक के हाथ में पड़ने के कारण उसका अच्छा फिल्मांकन नहीं हो पाया है । यह हिंदी साहित्य और 'गोदान' उपन्यास का दुर्भाग्य ही है कि इस विश्वविख्यात उपन्यास पर अच्छी फिल्म नहीं बन सकी । 'गोदान' का फिल्मी रूपांतरण हिंदी पाठकों को निराश करनेवाला ही है इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती ।

4.1.1.2 'सेवासदन' का फिल्मांकन

प्रेमचंद के बहुचर्चित उपन्यास 'सेवासदन' का सुप्रसिध्द निर्देशक नानूभाई वकिल ने फिल्मांकन किया । व्यावसायिकता इस फिल्म पर पूरी तरह से हावी दिखाई देती हैं । यह एक साधारण फार्म्युला फिल्म बन गई है । 'वेश्यावृत्ति' सेवासदन इस उपन्यास की मूल समस्या है।

इसपर जोर देने के बजाए निर्देशक ने इसी समस्या को माध्यम बनाकर दर्शकों को थियेटर की ओर ज्यादा से ज्यादा कैसे खिंचा जा सकता है इसपर विचार किया है और अपने इस विचार को मूर्त रूप देने में वह पूरी तरह से सफल रहा है । वेश्यावृत्ति के नामपर फिल्म में बहुत सारे नाच-गाने डाल दिए गए हैं । इन्हीं नाचगानों के दमपर फिल्म दर्शकों को थियेटर की ओर खिंचने में सफल रही । इस फिल्म को व्यावसायिक सफलता मिली ।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि 'सेवासदन' का फिल्मांकन करते समय निर्देशक ने बहुत सारे परिवर्तन किए हैं और वे परिवर्तन मूल कृति के साथ न्याय करने के लिए नहीं या फिर फिल्मांकन की जरूरत के मुताबिक नहीं तो व्यावसायिकता को ध्यान में रखकर किए गए हैं । एक पंक्ति में कहना चाहे तो प्रेमचंद के 'सेवासदन' को निर्देशक ने 'वेश्यासदन' बनाकर छोड़ दिया है ।

4.1.1.3 'रंगभूमि' का फिल्मांकन :

प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि' पर 'भवनानी प्रोडक्शन, मुंबई' ने इसी नाम से फिल्म बनाई । औद्योगिकीकरण की समस्या पूँजिपतियों और मजदूरों के संघर्ष का चित्रण इस उपन्यास में किया गया है । उपन्यास के नायक सूरदास और फिल्म के नायक सूरदास में काफी समानता है । संवाद भी ठीक है, लेकिन कहीं-कहीं पर वे नाटकीय हो गए हैं । प्रेमचंद ने पांडेपुर गाँव का जो सजीव वातावरण चित्रित किया है वह फिल्म से नदारद है । कलाकारों में अभिनय क्षमता की कमी का अहसास होता है । फिल्म की कई विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए भी 'रंगभूमि' सफल फिल्मांकन नहीं कहा जा सकता लेकिन उस समय की यह एक महत्वपूर्ण फिल्म थी इसे भी हम नकार नहीं सकते ।

4.1.1.4 'गबन' का फिल्मांकन

फिल्म निर्देशक कृष्ण चोपडा ने प्रेमचंद के 'गबन' उपन्यास पर फिल्म बनाई । लेकिन 'गबन' फिल्म निर्माण के दौरान ही निर्देशक कृष्ण चोपडा की आकस्मिक मृत्यु हुई । उनकी मृत्यु के बाद इस अधूरी फिल्म को हृषीकेश मुखर्जी ने पूरा किया । दोनों ही निर्देशकों का

'गबन' फिल्म पर अपना-अपना प्रभाव दिखाई देता हैं । दोनों ही निर्देशकों ने 'गबन' को पूरी ईमानदारी के साथ फिल्माया है । कथा में परिवर्तन नहीं किया गया लेकिन घटनाएँ कम कर दी गई है । फिल्म में उपन्यास का अंतिम अध्याय भी निकाल दिया गया है । पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी संतुलन बनाकर रखा है । रत्ना और जोहरा का जो लंबा चरित्रांकन उपन्यास में है उसे फिल्म में सीमित कर दिया गया है । ये सारे परिवर्तन फिल्म के अनुकूल होने के कारण किए गए हैं । जिसके कारण उपन्यास की आत्मा अखंडीत रही हैं और अनावश्यक विस्तार नहीं हुआ है । 'गबन' फिल्म में चरित्रों का चरित्रांकन बहुत अच्छी तरह से हुआ है । फिल्म के संवाद पात्रों के अनुकूल है । भाषा में दुरूहता बिलकुल भी नहीं है ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'गबन' फिल्म प्रेमचंद के उपन्यास का एक अच्छा फिल्मांकन है । थोड़ी-बहुत खामियाँ नजर आती हैं । लेकिन उसे नजरंदाज किया जा सकता है। यह फिल्म कलात्मक दृष्टि से तो सफल रही साथ ही व्यावसायिक सफलता भी इस फिल्म को मिली ।

4.1.1.5 'डाक बंगला' का फिल्मांकन :

'डाक बंगला' यह फिल्म कमलेश्वर के 'डाक बंगला' उपन्यास पर आधारित है । गिरीश रंजन इसके निर्देशक हैं । इस फिल्म की पटकथा तथा संवाद कमलेश्वर ने लिखे है । इस फिल्म का प्रदर्शन सन् 1974 में हुआ था । मूलतः यह फिल्म सामाजिक विषय को लेकर है । यह फिल्म समकालीन परिवेश में आर्थिक विपन्नता में जीनेवाली बेबस औरत का चित्रण करती है । ऐसा भी कहा जा सकता है कि समय की मार से डाक बंगला-सी बनी युवती की दर्दभरी दास्तान है 'डाक बंगला' फिल्म ! इस फिल्म में प्रमुख पात्र इरा की भूमिका सिमी गरेवाल, विमल की भूमिका शुभेंदु चटर्जी, हेमेंद्र की भूमिका नितिन सेठी, डॉ.चंद्रमोहन की भूमिका भगवान साहू, शीला की भूमिका गीता ने निभाई है । फिल्म कलाकार इफ्तिखार ब्रिगेडियर वर्मा के रूप में है ।

‘डाक बंगला’ फिल्म लगभग पूरी तरह से ‘फ्लैश बॅक’ में है । इरा नामक फिल्म की नायिका एक ब्रिगेडीयर की बेटी है, जो विमल के प्यार में पड़कर उससे शादी करती है । विमल परिस्थितिवश अपने करीयर में सफल नहीं होता । एक दिन खत लिखकर घर से भाग जाता है । अकेली इरा अपनी जीविका के लिए बतरा के घर फोन संदेशों को नोट करने का काम करती है । बतरा अपने बंगले में अकेला रहता है । कई बार बतरा अपना अकेलापन दूर करने के लिए अंग्रेजी गीत बजाकर ईश्वर को पुकारता है । यह सारी बातें इरा देखती है । कुछ दिन बाद इरा बतरा के बंगले में रहने लगती है । एक रात को बतरा अपनी बेबसी इरा से बाँटना चाहता है और इरा को अपनी बाँहों में भर लेता है । बतरा इरा को अंगूठी पहनाता है । जब बतरा को इस बात का पता चलता है कि इरा गर्भवती है तब वह उसे गर्भ गिराने की गोली देता है । इसपर नाराज होकर इरा डॉ.चंद्रमोहन के घर जाती है । वह डॉ.चंद्रमोहन से शादी करती है । यहाँ इरा का वजूद उसे जगाता है । आखिर में डॉ.चंद्रमोहन का देहान्त होता है, और इरा अपने घर वापिस आती है, तब उसे पता चलता है कि विमल वापिस आया है । विमल को मिलने जाने पर उसे पता चलता है कि विमल को गंभीर बिमारी ने जकड़ लिया है। विमल का देहान्त होता है । इसके बाद फिल्म ‘फ्लैश बॅक’ से तिलक और इरा के अंतिम दृश्य पर आती है ।

इस फिल्म की प्रमुख चरित्र ‘इरा’ जो समय और परिस्थितियों की चपेट में आकर अनेक पुरूषों द्वारा शोषित होती है । विमल नामक युवा इरा से प्रेमविवाह करता है । और उसे अकेला छोड़कर घर से भाग जाता है । डॉ.महेंद्र बतरा अपनी हवस को पूरा करने के लिए इरा का इस्तेमाल करता है । डॉ.चंद्रमोहन अपने अधूरेपन को भरने के लिए इरा से बूढ़ापे में शादी करता है । ब्रिगेडीयर वर्मा इरा का अय्याश पिता है ।

कमलेश्वर ने ‘इरा’ के माध्यम से एक ऐसे नारी की सृजना की है जो अपने समय के साथ संघर्ष करती है और पुरूषी वासनाओं का शिकार बनती है । इरा के इर्द-गिर्द फिल्म की कथा घूमती है । एक औरत जो डाक बंगले जैसी है । जिस तरह डाक बंगले में लोग आते हैं और रहकर चले जाते है । इसी प्रकार ‘इरा’ का इस्तेमाल होता है । हर कोई अपनी जरूरत

पूरी होनेपर इरा को छोड़कर चला जाता है । यह फिल्म समकालीन सामाजिक मानसिकता को भी उजागर करती है । हमारे समाज के कुछ लोग किसी अबला नारी की मजबूरी और असहायता का फायदा हरदम उठाते हैं और उस नारी का जीवन नर्कमय बना देते हैं । इरा फिल्म में कहती है- ''अभी तक मेरी जिंदगी कुछ इस तरह की रही है कि लोग आते रहे, कुछ दिन टिके और निकल गए... मैं जहाँ की तहाँ रही..लेकिन अब मैं अपनी जिंदगी आप जिऊँगी, तिलक ।''[5]

इस प्रकार 'डाक बंगला' फिल्म उपन्यास का एक सफल फिल्मांकन कहा जा सकता है। सरल, सीधी भाषा का प्रयोग इस फिल्म की विशेषता है । परिस्थिति, समय सापेक्ष भाषा का प्रयोग इसमें देखने को मिलता है । अतः कथानक में एकसूत्रता, पात्रों के गठन में सुसंगतता तथा भाषा में सरलता के कारण समकालीन परिवेश में इस फिल्म ने दर्शकों के मन पर राज किया ।

4.1.1.6 'काली आँधी' पर बनीं फिल्म आँधी :

हिंदी के सुप्रसिध्द लेखक कमलेश्वर के उपन्यास 'काली आँधी' पर फिल्म निर्देशक गुलजार ने 'आँधी' नाम से फिल्म बनाई । इस फिल्म की नायिका आरती देवी के जीवन को भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के जीवन के साथ जोड़ा गया । इस कारण फिल्म खासी चर्चा में रही । इस कारण फिल्म को अच्छी व्यावसायिक सफलता भी मिली । इस फिल्म के गीत तो आज भी लोग गुनगुनाते हैं। लेकिन यह फिल्म कमलेश्वर के उपन्यास का सफल फिल्मांकन है ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि जब हम उपन्यास और फिल्म में तुलना करते है तो समझ में आता है कि दोनों में बहुत सारा अंतर है । उपन्यास की मालतीदेवी और फिल्म की आरतीदेवी में बहुत अंतर है। मालती देवी के दो चेहरे है । दुनिया को दिखाने के लिए अच्छी छवि वाला चेहरा और परदे के पीछे एक मँजे हुए राजनेता का चेहरा । जो अपनी सफलता के लिए किसी भी हद तक गिर सकता है । राजनीतिक सफलता में परिवार को बाधा बनते देख वह अपने पति जग्गी बाबू और अपनी छोटी लिली को भी

अलग कर देती है । और फिर पीछे मुड़कर नहीं देखती । सत्ता के नशे में वह इतनी चूर है कि उसने क्या खोया है इसका भी अहसास उसे नहीं होता ।

उपन्यास की नायिका मालतीदेवी को फिल्म में आरतीदेवी नाम दिया गया है । नाम के साथ-साथ निर्देशक ने नायिका के पूरे चरित्र को ही फिल्म में बदल दिया है । निर्देशक ने आरतीदेवी के चरित्र को गरिमा प्रदान करने की कोशिश की है, यह उपन्यास की नायिका के चरित्र के विपरित है । फिल्म में 'पूर्व दिप्ती शैली' का उपयोग करते हुए कुछ नए दृश्य गढ़े गए हैं, अगर वे फिल्म में न होते तो भी खास फर्क नहीं पड़ता उदाहरण के तौर पर फिल्म का वह दृश्य जब जग्गी बाबू की पहली मुलाकात शराब के नशे में धुत आरतीदेवी से होती है । नशे में अकेली वह लड़खड़ाते कदमों से जग्गी बाबू के होटल में कमरा माँगने पहुँचती है । फिल्म में दोनों को रोमांस करते दिखाया गया है, लेकिन उपन्यास में यह बात नहीं है । फिल्म में उपन्यास के अन्य चरित्रों को भी परिवर्तित किया गया है । फिल्म में आरतीदेवी और जग्गी बाबू की बेटी लिली को नहीं दिखाया गया है, लेकिन उपन्यास में वह उपस्थित है । उपन्यास में पिता नाम का चरित्र नहीं लेकिन फिल्म में वह निर्माण किया गया है । क्यों किया गया है इसका जवाब तो निर्देशक ही दे सकता है । फिल्म में पती-पत्नी कई सालों के अंतराल के बाद फिर कुछ समय के लिए निकट आते हैं । लेकिन अपनी गलती का अहसास होने पर भी आरतीदेवी अपने पति और बेटी के सामने हेलिकॉप्टर में बैठकर चली जाती हैं । अगर वे चाहते तो एक साथ रह सकते थे क्योंकि दोनों कानूनी तौर पर अलग नहीं हुए थे ।

संक्षेप में कह सकते है कि निर्देशक ने उपन्यास पर फिल्म बनाते समय उसमें कई सारे परिवर्तन किए है, वह क्यों किए हैं इसका जवाब ढूँढ़ने पर भी समझ में नहीं आता । फिल्म में समस्या का समाधान देने की बजाए कई सवाल खड़े कर दिए हैं । ऐसा लगता है कि व्यावसायिक दृष्टि को मध्यनजर रखते हुए ज्यादातर परिवर्तन किए गए हैं । 'आँधी' फिल्म को उपन्यास का 'ठीक' फिल्मांकन कहा जा सकता है । राजनीतिक उपन्यास पर एक अच्छे फिल्मांकन का मौका निर्देशक ने व्यावसायिकता और कुछ अप्रत्यक्ष दबाव के कारण गवा दिया है ।

4.1.1.7 'आगामी अतीत' पर आधारित फिल्म 'मौसम'

'मौसम' फिल्म कमलेश्वर के उपन्यास 'आगामी अतीत' पर आधारित है । यह फिल्म सन् 1975 में रीलिज हुई । इसके पटकथा एवं संवाद कमलेश्वर ने ही लिखे है, लेकिन फिल्म निर्देशक गुलजार ने कमलेश्वर के नाम का जिक्र तक फिल्म में नहीं किया । गुलजार ने पटकथा एवं संवाद में स्वयं का और भूषण वनमाली का नाम ड़ाल दिया था । इस फिल्म में चार प्रमुख पात्र हैं जिसमें डॉ.अमरनाथ गिल (संजीवकुमार), चंदा और कजली (शर्मिला टागोर) और हरिहर थापा (ओम शिवपुरी) ।

'मौसम' फिल्म की कथा को अगर देखे तो डॉ.अमरनाथ गिल का चंदा की खोज करना इस कथा का आरंभ है । चंदा बेटी कजली का मिलना जो एक वेश्या बनी है, यह फिल्म का मध्य है और अपनी बेटी कजली को वेश्या व्यवसाय से बाहर निकालने का प्रयास करना तथा अंत में अपने साथ ले जाना यह इस फिल्म कथा का अंत है ।

'मौसम' फिल्म का नायक डॉ.अमरनाथ गिल है जो एक औषधि कंपनी का मालिक है। यह फिल्म उसकी और चंदा की आपबीती बयान करती हैं । डॉ.गिल अपने जवानी के दिनों दार्जिलिंग डॉक्टरी परीक्षा की तैयारी करने आता है, जहाँ उसकी मुलाकात चंदा नाम की लड़की से होती है । उन दोनों का बार-बार मिलना प्रेम में परिवर्तित हो जाता है । वे प्यार में मर्यादा की सारी हदें पार कर देते हैं । डॉ.गिल चंदा से डॉक्टर बनकर उसे लेने आने का वादा करता है । लेकिन वह वापिस नहीं आता । अब कई बरसों के बाद डॉ. गिल कम्पनी का मालिक बनकर एक महिने की छुट्‌टी बिताने दार्जिलिंग आये है । जहाँ उनका अतीत है । वे वहाँ के लोगों से चंदा के बारे में पूछताछ करते है और फिल्म एक नये मोड़ पर आती है । अब डॉ.गिल चंदा को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते एक मेडिकल की दुकान पर रूकते है, वहाँ एक लड़की एक पुरूष को सीढ़ियों से धक्के मारकर निकाल रही थी । डॉ.गिल देखते हैं तो चकित रह जाते है कि यह लड़की तो बिलकुल चंदा की हमशक्ल है । वे बेचैन होते है और रात के

समय में उस वेश्यालय में जाते है, जहाँ चंदा की लड़की कजली होने की जानकारी मिलती है। इसके पहले ही डॉ. को चंदा के देहान्त की जानकारी मिल चुकी होती है ।

डॉ.गिल उस वेश्यालय की मुखिया स्त्री गंगूरानी को कुछ पैसे देकर कजली को अपने साथ रखने की बात करते है । डॉ.गिल अपने प्रायश्चित को पूरा करने के लिए चंदा और अपनी बेटी 'कजली' को सुधारना चाहते हैं । साथ ही उसे बाप की छत्रछाया देना चाहते हैं। दिन-ब-दिन कजली में परिवर्तन होता है, लेकिन एक महाराज नामक रसोइया कजली के मन में डॉ.की इज्जत का खयाल भर देता है । कजली डॉ.गिल से झगड़ा कर वहाँ से वेश्यालय जाती है । वहाँ जानेपर उसे पता चलता है कि डॉ.ने उसे अपने पास रखने के लिए गंगूरानी को कोरा चैक दिया है । उस समय कजली के मन में डॉ.के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है । अपितु कजली यह नहीं जानती की डॉ.गिल कजली को अपनी बेटी के रूप में अपने पास रखना चाहते हैं ।

जब कजली वापिस डॉ.गिल के घर पहुँचती है तब वे नींद में होते हैं । कजली उनके हाथों को चूमकर होठों का चुंबन लेना चाहती है लेकिन उस वक्त डॉ.गिल जाग जाते है और कहते है- "इस शरीर के आगे भी कुछ देखा है, सोचा है, पहचाना है किसी को ? इसी दिन के लिए जन्मा था तुम्हारी माँ ने ...इसी बाजार के लिए पैदा किया था तुम्हें ? अच्छा हुआ ये सब देखने से पहले ही चंदा मर गई ।"[6] चंदा नाम सुनते ही कजली आश्चर्यचकित हो जाती है । उसपर डॉ.गिल कहते है- "मैं... हूँ वो डॉक्टर...डॉ.अमरनाथ...जिससे माँ का बदला लेना है तुझे...क्या बदला चाहिए तुझे...बोलो...बोलो...क्या चाहिए !"[7] दूसरे दिन जब डॉ.गिल कार में अपने शहर निकलते है तब रास्ते में कजली उनकी तस्वीर लेकर खड़ी हो जाती है । डॉ.गिल उसे माफी माँगकर गले लगाते हैं और गाड़ी में बिठाकर अपने साथ शहर ले जाते है।

'मौसम' फिल्म की कहानी उपन्यास के कथानक से भिन्न नहीं है । इसके माध्यम से समाज के एक ऐसे वर्ग की दर्दनाक कहानी प्रस्तुत हुई है जो सदियों से समाज के धारा प्रवाह से कटा रहा । वेश्या क्या होती है ? वेश्या कैसे बनती है ? उसे वेश्या बनानेवाले कौन लोग

होते हैं ? वेश्या व्यवसाय से उन स्त्रियों की मुक्ति कैसे होगी ? इन सारे प्रश्नों के उत्तर 'मौसम' फिल्म देती है ।

'मौसम' फिल्म की भाषा साहित्यिक भाषा से भिन्न है । 'आगामी अतीत' उपन्यास की भाषा परिस्थिति, काल समय को पाठकों के आँखों के सामने जीवित करनेवाली है, तो 'मौसम' फिल्म की भाषा सिर्फ पात्रों की अभिव्यक्ति प्रकट करने में सक्षम है । संवाद पात्रानुकूल है । अतः यह फिल्म मनोरंजनात्मक बोध देनेवाली, उपेक्षित वर्ग से परिचय करानेवाली तथा प्रायश्चित का भाव उत्पन्न करानेवाली कही जा सकती है । व्यावसायिक दृष्टि से यह फिल्म सफल साबित हुई ।

4.1.1.8 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' पर बनी फिल्म 'बदनाम बस्ती'

फिल्म निर्देशक प्रेम कपूर ने कमलेश्वर के उपन्यास एक सड़क सत्तावन गलियाँ पर 'बदनाम बस्ती' नाम से फिल्म बनाई । यह एक बहुत यथार्थवादी उपन्यास है । इस उपन्यास के केन्द्र में डाकू सरनाम सिंह और बंसरी नाम की नर्तकी है । कथानक इनके इर्द-गिर्द घूमता है । सरनामसिंह बंसरी को शादी करने का और हमेशा उसका साथ देने का वादा करता है लेकिन परिस्थितिवश अपना यह वादा पूरा नहीं कर पाता है । इस बीच बंसरी दर-दर ठोकरे खाती भटकती रहती है । एक दिन सरनामसिंह अपने क्लीनर रंगीले के लिए एक औरत खरीदता है । लेकिन यह पता चलने पर की वह खरीदी हुई औरत दूसरी और कोई न होकर 'बंसरी' है, उसके होश उड़ जाते है । 'बंसरी' के मन में सरनामसिंह के प्रति असीम नफरत और घृणा है । वह इसका बदला लेती है, वह सरनामसिंह का सर्वनाश कर देती है ।

फिल्म में भी डाकू सरनामसिंह को एक ट्रक ड्राइवर के रूप में आवारा और बदमाश दिखाया गया है । बंसरी को एक नर्तकी के रूप में दर्शाया गया है । बंसरी का चरित्र अतिवादी दिखाया गया है । वह या तो प्रेम में दीवानी हो जाती है या घृणा करने लगती है । फिल्म 'बदनाम बस्ती' में सरनामसिंह के माध्यम से जीवन की अनेक विसंगतियों को उजागर किया गया है । उपन्यास के फिल्मांकन में निर्देशक बहुत हद तक सफल हुआ है ।

4.1.1.9 'आपका बंटी' पर बनी फिल्म 'समय की धारा'

मन्नू भंडारी के सुप्रसिध्द उपन्यास 'आपका बंटी' को आधार बनाकर निर्देशक शिशिर मिश्र ने 'समय की धारा' फिल्म बनाई । यह पूरी तरह से व्यावसायिक फिल्म है । व्यावसायिकता के कारण निर्देशक ने 'आपका बंटी' उपन्यास के मूल कथ्य के साथ काफी छेड़खानी की है । इस तरह कथा में परिवर्तन करने पर लेखिका मन्नू भंडारी ने अपना विरोध दर्ज किया था । लेकिन फिर भी निर्देशक के न मानने पर यह झगड़ा कोर्ट में चला गया था । और इसके बाद मन्नू जी ने 'समय की धारा' फिल्म से अपना नाम हटवा लिया था ।

खैर, आपका बंटी उपन्यास का केन्द्रबिंदु एवं सर्वप्रमुख पात्र बंटी है और बंटी के चरित्र में बाल सुलभ व्यवहार एवं चिन्तन का सूक्ष्म चित्रण कर लेखिका ने बालक के भाव विकास का अनुशीलन करने में यथेष्ट सफलता प्राप्त की है । उपन्यास के प्रारम्भिक अंश में ही हमें बाल सुलभता के अनेक सुन्दर उदाहरण दीख पड़ते है और साथ ही बालस्तर का चिंतन भी दिखाई देता है । ध्यान्तव्य है कि बंटी को एक सामान्य स्तर का बालक ही चित्रित करते हुए भी उसमें असाधारण सूझ के दर्शन होते हैं और वह भले ही खुद किसी बात को न समझता हो परन्तु उसमें इतनी सहज बुध्दि अवश्य थी कि वह बात की बुराई या अच्छाई को जान सके । बंटी में अत्याधिक संवेदनशीलता भी है । परिस्थितियों के कारण बंटी कितना भी बदमिजाज और चिड़चिड़ा क्यों न बन गया हो, स्नेह के प्रति सदैव अनुक्रियाशील रहा है । इसमें कोई संदेह नहीं कि आपका बंटी उपन्यास में लेखिका बालक के भाव-विकास का अध्ययन प्रस्तुत करने में पूर्ण सफल रही है ।

बंटी के पिता का नाम अजय है और माता का नाम शकुन । अजय कोलकाता में डिवीजनल मैनेजर पद पर कार्य करता है । अजय और शकुन दोनों में ही अहं की कुछ इतनी अधिक प्रबलता है कि वे दोनों विवाह के पश्चात एक-दूसरे से समझोता करने में असमर्थ रहते और दोनों एक-दूसरे के समक्ष झुकना भी पसंद नहीं करते । इसका परिणाम यह होता है कि शकुन अपने बेटे बंटी को लेकर अलग हो जाती है और कोलकाता छोड़कर एक दूसरे शहर में

आकर अध्यापन कार्य शुरू कर देती है तथा शीघ्र ही अपनी योग्यता के बल पर प्रिन्सिपल बन जाती है । अतएव बंटी का बचपन अपने पिता अजय से दूर रहकर व्यतीत होता है और माँ शकुन ही कई वर्षों तक उसका लालन पालन करती है । पिता अजय कभी एकाध दिन के लिए बंटी से मिलने आते है तो भी वे शकुन के घर पर नहीं रूकते और कहीं अलग रहकर केवल बंटी को भेट करने के लिए बुलाते है । आगे जाकर अजय और शकुन में तलाक हो जाता है । लेखिका ने 'आपका बटी' उपन्यास में यह भी संकेत किया है कि तलाक लेनेवाले स्त्री-पुरूष की सामाजिक स्थिति चाहे कितनी ही उच्च क्यों न हो अधिकांश व्यक्तियों की दृष्टि उनके प्रति सहानुभूति की न होकर निंदा और भर्त्सना की ही होती है । इसी प्रकार लेखिका के अनुसार तलाक की समस्या उस समय और भी अधिक गम्भिर एवं भयानक हो जाती है जब संतानवती स्त्री किसी अन्य संततिवान पुरूष से पुनर्विवाह कर लेती है और दोनों पुनर्विवाह कर लेने के बाद अपनी पूर्वसंतान को भी अपने साथ रखना चाहते हैं । उपन्यास में यह भी प्रश्न उठाया गया है कि क्या नारी अपनी सौत के बच्चों को अपनी कोख से जन्मी संतान के समान प्यार दे सकती है ? और जब अजय एक दिन बंटी को अपने साथ कोलकाता ले जाता है तो शकुन सोचती है कि क्या मीरा (अजय की दूसरी पत्नी) बंटी को अपना समझ सकेगी क्या कभी वह उसे अपने बच्चे की तरह प्यार करेगी शायद नहीं.. वह कभी उससे जुड़ा हुआ महसूस नहीं करेगी । इस प्रकार मन्नू जी ने यह स्पष्ट करना चाहा है कि दम्पति का अहं संतान पर वज्र बनकर गिरता है और वास्तविक पीड़ा भी उसे ही सहन करनी होती है तथा वह उपेक्षा एवं तिरस्कार का पात्र समझा जाता है ।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि शकुन को अपने प्रिय पुत्र बंटी की अवहेलना कर अपने नये पति डॉ.जोशी की पहली दो संतानों अमि और जोत को अपना स्नेह प्रदान करने के साथ-साथ डॉक्टर की इच्छा पूर्ति भी करनी पड़ती है और वह मातृत्व से अधिक पत्नीत्व को महत्व देने के लिए बाध्य हो जाती है तथा उसे बंटी की उपेक्षा कर डॉक्टर को शरीर सुख प्रदान करने के लिए विवश होना पड़ता है । इसका दुष्परिणाम बंटी को सहन करना पड़ता है और वह हट्टी, फूहड़ एवं आज्ञा का उल्लंघन करनेवाला बालक बन जाता है तथा स्वयं को

फालतू समझने लगता है । साथ ही लेखिका ने यह भी संकेत किया है कि संतानवती स्त्रियों के पुनर्विवाह करने पर लोग किस प्रकार व्यंग्य करते है । इस तरह पति-पत्नी के झगडे के कारण तलाक होना उनकी संतान पर किस तरह बड़ा आघात बन सकता है । वह दिन-रात अंदर-ही-अंदर किस तरह से घुलता रहता है, इसे बड़े मार्मिक ढंग से दर्शाया गया हैं । इस प्रकार 'आपका बंटी' निर्विवाद रूप से एक उल्लेखनीय उपन्यास है ।

उपन्यास और फिल्म की जब हम तुलना करते हैं तब उपन्यास का बंटी और फिल्म के बंटी मे हमें फर्क नजर आता है । बहुत हद तक इस मुख्य चरित्र को फिल्म में बदलकर रख दिया गया है । थोडे-बहुत अंतर से बाकी चरित्रों का भी यही हश्र किया गया है । उपन्यास की कहानी को फिल्म में केवल आधार रूप में ग्रहण किया गया है । इस कारण उपन्यास के बेहतर फिल्मांकन की उम्मीद रखना ही व्यर्थ है । सबसे महत्वपूर्ण और चौंकानेवाली बात तो यह है कि निर्देशक ने उपन्यास का अंत ही फिल्म में बदलकर रख दिया है । उपन्यास के अंत में बंटी परिस्थितिवश होस्टल में रहने के लिए बाध्य हो जाता है । लेकिन फिल्म में निर्देशक ने अपने पिता के घर से भागकर जाने पर दर-दर की ठोकरें खाते हुए भूख के कारण बंटी की मृत्यु दिखाई है । और यह दुखद समाचार मिलने पर शकुन और उसका डॉक्टर पति और अजय एवं उसकी पत्नी मीरा शवागार में बंटी के शव की पहचान करने पहुँचते है और बंटी को मृत देखकर शोक मनाते है, पछताते है । यहाँ फिल्म समाप्त हो जाती है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि फिल्म की व्यावसायिकता में कलात्मकता कहीं खो गई है। ये दोनों चीजें फिल्म में साथ मिलकर चलती तो निश्चित तौर पर यह एक बेहतरीन फिल्म साबित होती । लेकिन 'समय की धारा' फिल्म 'आपका बंटी' उपन्यास का एक औसत दर्जे का फिल्मांकन है ।

4.1.1.10 'सारा आकाश' का फिल्मांकन

राजेन्द्र यादव के उपन्यास 'सारा आकाश' पर आधारित फिल्म 'सारा आकाश' निर्देशक बासु चटर्जी के जीवन की पहली फिल्म थी । नवसिनेमा आंदोलन के शुरूआती दौर की यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण फिल्म मानी जाती है ।

'सारा आकाश' फिल्म की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें निम्न मध्यवर्गीय परिवार का बहुत यथार्थवादी चित्रण किया गया है । 'सारा आकाश' में निम्न मध्यवर्ग में अनिच्छा से होनेवाले विवाह की समस्या उठाई गई है । ''फिल्म 'सारा आकाश' वस्तुतः अनिच्छित विवाह में उत्पन्न होनेवाली समस्याओं का सटीक अंकन करती है, साथ ही यह फिल्म निम्न मध्यवर्गीय परिवार की विसंगतिपूर्ण स्थितियों एवं विद्रुपताओं को भी प्रकट करती है । विवाहोपरान्त उत्पन्न गलतफहमी, अहं, उपेक्षापूर्ण व्यवहार किस प्रकार सम्बन्धों को नाटकीय स्थिति में पहुँचा देता है, यह फिल्म उसका प्रभावपूर्ण अंकन करती है ।''[8] निम्नमध्यवर्गीय परिवारों में विवाह के बाद लड़कियों को तरह-तरह की शारीरिक-मानसिक यातनाएँ सहनी पड़ती है, यही इस उपन्यास की कथावस्तु है । लड़के भी खुश नहीं है । 'विवाह' के लिए मानसिक रूप से तैयार न होते हुए भी उनकी जबरन शादी कर दी जाती है। विवाह जैसे महत्वपूर्ण रिश्ते को किस कदर निभाना चाहिए इसकी समझ ने आने के कारण वे सुनी-सुनाई बातों के आधार पर अपनी पत्नी से व्यवहार करते हैं और उसे अपनी नौकरानी बनाकर रखना चाहते हैं ।

शादी-ब्याह के मामले में हमारा समाज आज भी उतना गंभीर नहीं है । बिना किसी जान-पहचान के, एक-दूसरे की पसंद के बिना लड़के-लड़कियों की शादी कर दी जाती है, इसमें थोड़ा-बहुत बदलाव आया है, लेकिन वह सीमित है । दहेज और सामाजिक हैसियत की ओर पूरा ध्यान दिया जाता है । इस तरह की शादी के बाद दोनों एक-दूसरे के साथ 'अॅडजस्ट' कर पाए तो ठीक है, नहीं तो उनकी हालत 'सारा आकाश' के पति-पत्नी 'समर और प्रभा' जैसी हो जाती है ।

'सारा आकाश' उपन्यास का कथा सार इस प्रकार है- एक निम्नमध्यवर्गीय परिवार में सेवानिवृत्त पिता की पच्चीस रूपए पेंशन ओर बड़े बेटे के निन्यानवे रूपयों से ही घर के सात लोगों का जीवनयापन होता है । समर जो कि बडे भाई के बाद घर में दूसरा बड़ा बेटा है, बारहवीं कक्षा में पढ़ता है । घर में समर के माता-पिता, भैया-भाभी विवाहित एवं परित्यक्ता बहन मुन्नी एवं छोटा भाई अमर है । घर की आर्थिक हालत खराब है इसलिए घरवाले मिलकर समर का विवाह करवा देते हैं । समर आदर्श एवं क्रांतिकारी विचारों का है । अतः विवाह का घोर विरोध करता है परन्तु दहेज में मिलनेवाले धन की आशा में कोई समर की बात नहीं सुनता एवं मैट्रीक पास प्रभा समर की पत्नी बनकर इस परिवार में आ जाती है । प्रभा दहेज में कुछ विशेष नहीं लाती इस कारण घरवाले उससे मन-ही-मन नाराज है । विवाह के बाद प्रथम रात्रि को प्रभा शोरगुल सुन खिड़की के पास जाती है उसे पता चलता है कि पड़ोस में किसी स्त्री ने खुद को जलाकर आत्महत्या कर ली । प्रभा सुन्न होकर खिड़की पर खड़ी रह जाती है । इधर कमरे में समर आता है एवं पत्नी द्वारा उचित आदर-सत्कार न पाकर स्वयं को अपमानित समझकर क्रोधित हो, प्रभा से बिना कुछ बोले चला जाता है । अगले दिन घर में सबको उनके अनबन की सूचना मिल जाती है । समर की भाभी यह सब देखकर समर के कान भर देती है। समर प्रभा से बिलकुल बात नहीं करता है । चार दिन रहकर प्रभा मायके चली जाती है । तीन महिने बाद प्रभा के लौटने पर भी समर उससे बात नहीं करता । मुन्नी को छोड़कर घर के सभी सदस्य भी प्रभा को किसी न किसी बहाने निंदा करने लगते है । समर बारहवीं की परीक्षा देता है । प्रभा बिना बोले ही उसका भली-भाँति ध्यान रखती है । समर के न बोलने पर प्रभा भीतर ही भीतर घुटती रहती है । चरित्रहीनता की टिप्पणी को सुनकर प्रभा रात में छत पर जाकर रो पड़ती है । समर देर रात में घर लौटता है एवं छत पर प्रभा को रोते देख उससे रोने का कारण पूछता है । समर एवं प्रभा के बीच संवादहीनता का बाँध टूट जाता है और वे एक-दूसरे की मनःस्थिति को समझकर गले लगकर रो पड़ते है । उनके सारे आपसी मतभेद एवं नाराजगी दूर हो जाती है ।

फिल्म 'सारा आकाश' में बासु चटर्जी ने उपन्यास के कथ्य को पूरी ईमानदारी के साथ अपने दृष्टिकोण से फिल्माया है । " 'सारा आकाश' फिल्म इतनी निष्ठा से बनाई गई है कि वह उपन्यास का सिनेमाई संस्करण लगती है । उपन्यास और फिल्म दोनों में लगभग अभेद की स्थिति उत्पन्न हो गई है । फिल्म को यथार्थ के अधिकाधिक निकट लाने के लिए इस फिल्म की सारी शूटींग वास्तविक स्थलों पर की गई । अधिकांश शूटींग आगरा में राजेन्द्र यादव के पुराने मकान में की गई । फिल्म ब्लैक एण्ड वाइट में जान-बूझकर बनाई गई जिससे की कहानी के घुटन भरे वातावरण को रेखांकित किया जा सके । इस फिल्म की एक यह भी विशेषता रही की इसे मूल उपन्यास में कोई फेरबदल किए बिना बनाया गया । इसको अत्यंत निष्ठापूर्वक प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । 'सारा आकाश' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि रोचकता और प्रभावोत्पादकता में यह मूल उपन्यास को भी पीछे छोड़ गई है । ऐसा बहुत कम होता है कि फिल्म मूल कृति से भी अधिक प्रभावशाली हो जाए । इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'सारा आकाश' बहुत सीमा तक राजेन्द्र यादव के उपन्यास का आदर्श फिल्मांकन है ।"[9] बासु चटर्जी की 'सारा आकाश' फिल्म पूरी तरह से कलात्मक होते हुए भी इसे बहुत सारी व्यावसायिक सफलता भी मिली । दर्शकों ने इसे काफी पसंद किया । आलोचकों द्वारा भी यह फिल्म बहुत सराही गई ।

4.1.1.11 'चित्रलेखा' का फिल्मांकन :

भगवतीचरण वर्मा के बहुचर्चित उपन्यास 'चित्रलेखा' पर इसी नाम से निर्देशक किदार शर्मा ने दो बार फिल्म बनाई । पहली बार सन् 1941 ई.में श्वेत-श्याम फिल्म बनाई और दूसरी बार सन् 1965 ई. में रंगीन फिल्म का निर्माण किया । पहली बार बनाई फिल्म उपन्यास का सफल फिल्मांकन था । "पहली 'चित्रलेखा' का निर्माण पूरी निष्ठा व ईमानदारी के साथ किया गया था । फिल्म का कथानक उपन्यास की भाँति ही काफी सशक्त और जीवंत है । फिल्म के संवाद भी बहुत सजीव और हृदयस्पर्शी है ।...वैसे फिल्म के सभी दृश्य उपन्यास से लिए गए थे । फिल्म में अच्छे कलाकारों को लेने के कारण चरित्र सजीव होकर

दर्शकों के सामने आए हैं । पहली 'चित्रलेखा' फिल्म को उपन्यास का सफल फिल्मांकन ही कहा जाएगा क्योंकि फिल्म में उपन्यास की आत्मा को पकड़ा जा सका है ।"[10]

दूसरी बार बनाई 'रंगीन चित्रलेखा' फिल्म उपन्यास का असफल फिल्मांकन साबित हुई। इस फिल्म में उपन्यास की घटनाएँ, चरित्रांकन आदि सबकुछ बदल दिया गया है । केवल कथानक में समानता नजर आती है । फिल्म में इतिहास संबंधी सबसे बड़ी गलती यह है कि उपन्यास में मौर्यकालीन समय बताया गया है, उसे फिल्म में गुप्तकालीन दर्शाया गया है। और एक बड़ा जो दोष दिखाई देता है वह है कि 'चित्रलेखा' जैसे प्रभावशाली उपन्यास पर निर्देशक ने एक कमजोर फिल्म बनाई है, जो मूल कृति से विसंगत नजर आती है । फिल्म माध्यम के बारे में यह भी एक चौंकाने वाली बात ही है कि एक ही निर्देशक एक ही उपन्यास पर दो बार फिल्म बनाता है तो पहला फिल्मांकन सफल होता है और दूसरी बार किया फिल्मांकन असफल होता है । ऐसा क्यों हुआ ? यह भी एक विचारनीय तथ्य है ।

4.1.1.12 'धर्मपुत्र' का फिल्मांकन :

सुप्रसिध्द फिल्म निर्देशक यश चोपडा ने आचार्य चतुरसेन शास्त्री के प्रसिध्द उपन्यास 'धर्मपुत्र' पर आधारित इसी नाम से फिल्म बनाई । व्यावसायिक दृष्टि से यह एक अत्यंत सफल फिल्म साबित हुई । 'धर्मपुत्र' उपन्यास हिंदू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता की पृष्ठभूमि पर लिखा गया उपन्यास है । जिसका कथानक मुख्य रूप से एक अवैध मुस्लिम बालक से संबंधित है । इस लड़के को एक हिंदू परिवार अपना लेता है और बिलकुल अपने बच्चे की तरह पालता है किंतु इस एक बात को छोड़कर उपन्यास और फिल्म के कथानक में अत्याधिक अंतर है । "वस्तुतः जब हम फिल्म उपन्यास की तुलना करते है तो पाते है कि क्रमशः दोनों के कथानकों में इतना अंतर आ जाता है कि यह कहना कठिन है कि फिल्म उपन्यास पर आधारित है ।"[11]

4.1.1.13 'त्यागपत्र' का फिल्मांकन :

'त्यागपत्र' जैनेंद्रकुमार का एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है । इसमें उपन्यासकार ने यह बताने का प्रयास किया है कि समाज जितनी सरलता से किसी भी स्त्री को पापी, कुलटा आदि कह देता है, क्या सही मायने में समाज के कहने भर से कोई स्त्री पापी या कुलटा हो जाती है कोइ भी स्त्री किन परिस्थितियों और संकटों के कारण तथाकथित पाप करने पर मजबूर हुई, समाज इस पर विचार नहीं करता । वह तो सदा दूसरों को कठघरे में खड़ा कर पूरी कठोरता से जल्दबाजी में अपना निर्णय करता है । उसी स्त्री के प्रति समाज का रवैया तनिक भी सहानुभूति का नहीं होता है । 'त्यागपत्र' का वाचक प्रमोद जो पेशे से न्यायाधीश है अब तक बहुत सारे मुकद्दमों में तटस्थता से अपना निर्णय सुना चुका है । लेकिन अपनी ही बुआ मृणाल का मामला जब उसकी अदालत में आता है तो वह कोई भी निर्णय करने में स्वयं को अक्षम पाता है । मृणाल को पूरा समाज पतिता, कुलटा और भी बहुत कुछ कहकर तिरस्कृत करता है, लेकिन प्रमोद मन में जानता है कि उसकी बुआ कितनी पवित्र है । प्रमोद समाज के खिलाफ भी नहीं जाना चाहता और वास्तविकता का पता होने के कारण बुआ को कोई दंड भी नहीं देना चाहता । इसलिए वह अपने पद से 'त्यागपत्र' देकर स्वयं को इस धर्मसंकट से मुक्त करता है ।

'त्यागपत्र' की कहानी मृणाल नाम की किशोरी के अपनी सहेली शीला के भाई के प्रति उसके आकर्षण से शुरू होती है । इस उम्र में इस तरह का आकर्षण कोई पाप नहीं है, फिर भी घरवालों को इस प्रेम संबंध के बारे में जानकारी होने पर किसी गुनहगार की तरह उसकी कमरे में बंद करके बेंत से पिटाई की जाती है । उसकी पढ़ाई बंद करवा दी जाती है । और जल्दबाजी में एक अधेड उम्र के विधुर आदमी से उसकी शादी कर दी जाती है । लेकिन यह शादी जल्द ही टूट जाती है, क्योंकि मृणाल के प्रेमसंबंध का उसके पति को पता चलता है, और वह उसे घर से बाहर निकाल देता है । यहाँ से मृणाल के मुश्किलों का सिलसिला शुरू होता है । उसके बाद वह एक कोयला बेचने वाले का आश्रय लेती है, वह उसे अपनी वासना का शिकार बनाता है । मृणाल इसका विरोध नहीं करती । वास्तव में वह बहुत अधिक विरोध

करने की स्थिति में नहीं होती और पूरी तरह से उसके प्रति समर्पित हो जाती है । किंतु वहाँ पर भी उसको स्थिरता नहीं मिलती । वह कोयले वाला उसे गर्भवती बनाकर धोखा देकर चला जाता है । मृणाल का गर्भपात हो जाता है और वह गुमनाम जिंदगी जीने लगती है किंतु बदनसीबी वहाँ भी उसका पीछा नहीं छोड़ती और आखिर में वह एक वेश्या बन जाती है ।

'त्यागपत्र' फिल्म में उपन्यास की सभी प्रमुख घटनाएँ दिखाई गई है लेकिन उनमें तालमेल नहीं है । फिल्म में अनेक जगह पर कथा की कोई न कोई कड़ी गायब नजर आती है। फिल्म में जिन दृश्यों को विस्तार देने की आवश्यकता थी उसे संक्षिप्त दृश्य में दिखाकर छोड़ दिया गया है । जैसे-मृणाल और उसके प्रेमी का संबंध, अधेड़ उम्र के विधुर आदमी के साथ विवाह के बाद का समय । 'त्यागपत्र' के निर्देशक जैनेंद्र के मनोवैज्ञानिक उपन्यास का सफल फिल्मांकन नहीं कर पाए है । '' 'त्यागपत्र' फिल्म जैनेंद्र के उपन्यास का निराशाजनक फिल्मांतरण है । मूल कृति के प्रति आवश्यकता से ज्यादा निष्ठा दर्शाने के कारण फिल्म का स्वतंत्र एवं स्वायत्त स्वरूप ही नष्ट हो गया है । वह स्वयं में हर दृष्टि से पूर्ण रचना नहीं बन पाई है । फिल्म को देखकर ऐसा नहीं लगता कि निर्देशक को फिल्म के निजी विशिष्ट स्वरूप की गहरी समझ है बल्कि यह प्रतीत होता है कि उसने फिल्म को उपन्यास के एक आधे-अधूरे परिचय के रूप में बनाया है ।''[12]

4.1.1.14 'अठारह सूरज के पौधे' पर आधारित फिल्म 'सत्ताइस ड़ाउन':

'अठारह सूरज के पौधे' हिंदी के सुप्रसिध्द लेखक रमेश बक्शी का एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है । इसका फिल्मांकन किया है निर्देशक अवतार कौल ने । उन्होंने फिल्म का नाम रखा-'सत्ताईस डाउन' (वाराणसी एक्सप्रेस) '' 'सत्ताईस डाउन' रमेश बक्शी के उपन्यास का एक अत्यंत सफल फिल्मांतरण है । वस्तुतः किसी प्रयोगवादी और मनोवैज्ञानिक उपन्यास का फिल्मांतरण किस प्रकार किया जाना चाहिए 'सत्ताईस डाउन' को इसके उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है । 'सत्ताईस डाउन' मूल कृति में निष्ठा रखते हुए भी उपन्यास के

आधार पर बनाई गई एक स्वतंत्र कलात्मक फिल्म है जो निर्देशक की मौलिक सोच और फिल्म कला पर उसके जबरदस्त अधिकार दोनों ही चीजों को दर्शाती है ।''[13]

फिल्म और उपन्यास दोनों में निम्न मध्यवर्ग के जीवन का वास्तववादी चित्रण किया गया है । ऐसा लगता है कि उपन्यास और फिल्म के पात्र हमारे आसपास के परिवेश के ही मनुष्य है । दोनों माध्यमों में इस सच्चाई को दर्शाया गया है कि हमारे पितृसत्ताक समाज में पिता कैसे अपनी ही मनमानी करके बेटे की भलाई के नामपर उसके जीवन के निर्णय खुद करता है और बेटे का जीवन नर्क बना देता है । भारतीय घरों में अक्सर 'बाप' नाम के प्राणी का इतना आतंक छाया रहता है कि परिवार के अन्य सदस्सों को 'बाप' के आदेशों का केवल पालन करना होता हैं, विरोध करने का साहस कभी नहीं होता । फिर वह आदेश नौकरी का हो या विवाह का इच्छा न होते हुए भी उसका पालन करना पड़ता है । उपन्यास के नायक संजय को भी यह सब भुगतना पड़ता है । वह पितृसत्ताक समाज की परंपराओं की बली चढ़ जाता है । फिल्म में भी इसी भारतीय समाज और इसकी दमघोंटू परंपराओं की पोल खोलकर रख दी गई है । जहाँ बच्चों को दबाकर रखा जाता है, बचपन से ही मार-पीटकर धमकाकर उनके मन में डर पैदा किया जाता है ताकि वह कभी अपना मुँह न खोल सके । केवल 'बाप' की हाँ मे हाँ मिलाए फिल्म में संजय भी ऐसे डर के माहौल में जी रहा है ।

संजय के जीवन के दो अहम फैसले 'नौकरी' और 'छोकरी' (शादी) दोनों का निर्णय उसका बाप ही करता है । हाँलाकि संजय चित्रकार बनना चाहता था, उसकी विधिवत पढ़ाई भी वह कॉलेज में कर रहा था लेकिन उसका बाप रेल विभाग में होने के कारण वह उसको भी रेल विभाग में टी.टी. की नौकरी करने के लिए मजबूर करता है । वह नौकरी करने लगता है। इस बीच उसे 'शालीनी' नाम की एक खूबसूरत लड़की से प्रेम हो जाता है । वह भी उससे प्रेम करती है । लेकिन संजय के पिता को इसकी जानकारी नहीं है । एक दिन वह गाँव की एक अनपढ़ लड़की से संजय का विवाह तय कर देते है और अपना निर्णय सुना देते है । यहाँ पर भी संजय कुछ विरोध नहीं करता । पिता को इच्छानुसार शादी कर लेता है । शादी के बाद उसक पत्नी को 'शालीनी' से प्रेम की बात पता चलती है तो वह संजय को बात-बात

में ताने देने लगती है । उसका धीरज जवाब दे जाता है और वह एक दिन निराशा में ही घर छोड़कर रेल स्टेशन पर आता है और जो ट्रेन उसके सामने आती है 'सत्ताईस डाउन' (वाराणसी एक्सप्रैस) में चढ़ जाता है । वाराणसी पहुँचने पर भी उसके मन की बेचैनी कम नहीं होती । वह शराब पीता है और वेश्यागमन भी करता है ।

निर्देशक ने उपन्यास का फिल्मांकन पूरी ईमानदारी और निष्ठा से किया है । मूल रचना में बहुत कम परिवर्तन किए गए है । फिर भी जो कुछ परिवर्तन हमें दिखाई देते हैं वह फिल्म विधा के अनुकूल ही हैं । उपन्यास में संजय घर से भागकर पठानकोट जाता है लेकिन फिल्म में उसे बनारस गया हुआ दिखाया है । बनारस धार्मिक स्थान होने के कारण निर्देशक ने शायद संजय की मानसिक शांति के लिए बनारस का चयन किया होगा लेकिन वहाँ जाकर तो संजय मदीरा और मदिराक्षी में डूब जाता है । फिर बनारस ही क्यों चुना यह बात समझ में नहीं आती । इस तरह के कुछ परिवर्तनों को नजरंदाज करें तो उपन्यास और फिल्म में काफी हद तक समानता है । चरित्रों के चरित्रांकन में भी समानता है । फिल्म और उपन्यास में और एक समानता दिखाई देती है वह है 'फ्लैश बैक शैली' के प्रयोग की । उपन्यास और फिल्म का नायक निरंतर वर्तमान और भूतकाल में आता जाता रहता है इसलिए लेखक और निर्देशक ने 'फ्लैश बैक' का अधिकतर प्रयोग किया है । फिल्म इस दृष्टि से उपन्यास से कहीं अधिक अपना प्रभाव छोड़ने में कामयाब हो जाती है । ''फिल्म बनारस से लौटने की संजय की यात्रा से प्रारंभ होती है और जो कुछ बीत चुका है उसे 'फ्लैश बैक' के द्वारा दिखाया जाता है । जिनके साथ संजय का एकालाप चलता रहता है ।''[14]

4.1.1.15 'कोहबर की शर्त' पर बनी फिल्म 'नदिया के पार'

फिल्म 'नदिया के पार' केशवप्रसाद मिश्र के मर्मस्पर्शी उपन्यास कोहबर की शर्त के पूर्वार्ध्द पर आधारित है । यह एक मनोरंजक फिल्म थी । इस फिल्म का निर्देशन किया था गोविन्द मूनिस ने तथा उन्होंने ही इस फिल्म की पटकथा और संवाद लिखे थे । प्रमुख

कलाकारों में थे सचिन, साधना सिंह । 'नदिया के पार' यह ग्रामीण पृष्ठभूमि में रची-बसी मार्मिक प्रेमकथा थी, जिसे लोगों ने बेहद पसंद किया था ।

4.1.1.16 'तमस' का फिल्मांकन :

हिंदी के सुप्रसिध्द लेखक भीष्म साहनी के देश-विभाजन की त्रासदी पर आधारित 'तमस' उपन्यास पर सुविख्यात फिल्म निर्देशक गोविंद निहलानी ने 'तमस' नाम से ही फिल्म का निर्माण किया । पहले इसे दूरदर्शन पर हर हफ्ते धारावाहिक के रूप में प्रदर्शित किया गया। बाद में इसे फीचर फिल्म का रूप दिया गया ।

'तमस' उपन्यास में साम्प्रदायिकता का चित्रण बड़ी सजगता से किया गया है । आजादी के ठीक पहले साम्प्रदायिकता को हथियार बनाकर पाशविकता का जो खूनी खेल इस देश में खेला गया था, उसका अंतरंग चित्रण इस उपन्यास में किया गया है । आजादी के पूर्व की पाँच दिन की कहानी को भीष्म साहनी ने इस खूबी के साथ बुना हैं कि साम्प्रदायिकता का हर पहलू तार-तार उद्घाटित होता है । इसमें स्वतंत्रता से पूर्व अंग्रेजी शासकों की कूटनीति के फलस्वरूप उत्पन्न हुई हिंदू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता की चिंगारी और उससे भड़की विकराल आग को बड़े ही सटीक ढ़ंग से प्रस्तुत किया गया है । ''भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या एक युग पुरानी है और इसके दानवी पंजों से अभी तक इस देश की मुक्ति नहीं हुई है । आजादी से पहले विदेशी शासकों ने यहाँ की जमीन पर अपने पाँव मजबूत करने के लिए इस समस्या को हथकंड़ा बनाया था और आजादी के बाद हमारे देश के कुछ राजनीतिक दल इसका घृणित उपयोग कर रहे हैं । और इस सारी प्रक्रिया में जो तबाही हुई है उसका शिकार बनते रहे हैं वे निर्दोष और गरीब लोग जो न हिंदू है, न मुसलमान बल्कि सिर्फ इंसान है, और हैं भारतीय नागरिक ।''[15] भीष्म साहनी ने आजादी से पहले हुए साम्प्रदायिक दंगों को आधार बनाकर इस समस्या का सूक्ष्म विश्लेषण किया है और उन मनोवृत्तियों को उघाड़कर सामने रखा है जो अपनी विकृतियों का परिणाम जनसाधारण को भोगने के लिए विवश करती हैं । लेखक ने उस समय के हिंदुओं और मुस्लिमों के आपसी झगड़े का, उस झगड़े के कारणों और परिणामों से

जुड़े संदर्भों का वास्तविक चित्रण 'तमस' में किया है । इसमें साम्प्रदायिक दंगों की सामाजिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि का पूर्ण परिचय दिया गया है ।

गोविंद निहलानी ने 'तमस' उपन्यास का सफल फिल्मांकन किया है । देश विभाजन की त्रासदी को उन्होंने स्वयं भोगा था । इस कारण उस समय की सच्चाई को वे फिल्म के माध्यम से प्रभावशाली ढ़ंग से प्रस्तुत कर सके है । 'तमस' गोविंद निहलानी की अत्याधिक सफल एवं बहुचर्चित फिल्म है । " 'तमस' गोविंद निहलानी की सर्वश्रेष्ठ फिल्म है । यह हिंदी की एक क्लासिक कृति है । गोविंदजी की एक क्लासिक फिल्म थी । भारतीय फिल्म एवं टेलीविजन के इतिहास में इस फिल्म को एक मील का पत्थर माना जा सकता है । इस एक फिल्म के आधार पर भी गोविंद निहलानी अपने समय और समाज के एक श्रेष्ठ फिल्मकार प्रमाणित होते है ।"[16]

'तमस' कृति में अनेक वर्गों एवं साम्प्रदायों की मनोवृत्ति को दर्शाया गया है, जो साम्प्रदायिकता के तूफान में इंसान को हैवान बना देती है । उपन्यास की शुरूआत होती है सालोतरी साहब के लिए मुरादअली के कहने पर नत्थू के हाथों सुअर को मार ड़ालने से ! नत्थू के हाथों सुअर को मरवाया जाता है । बाद में उसी सुअर को अंधेरे में मस्जिद की सीढ़ियों पर फिंकवा दिया जाता है । मस्जिद के सामने फेंके हुए सुअर को देखकर मुसलमान उत्तेजित हो जाते है । फिर गाय की हत्या की जाती है, तो हिंदू भी भड़क उठते है । इस कारण एक तनावपूर्ण माहौल पैदा होता है । गोविंद निहलानी ने इस तनावपूर्ण वातावरण को उसी तरह नत्थू द्वारा सुअर मारने से उत्पन्न किया है । कृति और फिल्म दोनों में ही तत्कालीन तनावपूर्ण और साम्प्रदायिक माहौल का सुंदर चित्रांकन हुआ है । "साम्प्रदायिक तनावों के दृश्यों, अमानवीय घटनाओं एवं उनके परिणामों के फलस्वरूप जीवन के पाशविक तथा भयानक बीभत्स रूप का जैसा चित्रण कृति में हुआ है, उन्हीं चित्रों को गोविंद निहलानी ने बड़ी सूक्ष्मता से अपनी फिल्म में दर्शाया हैं ।"[17] उपन्यास और फिल्म का वह चित्रण इतना दिल दहला देनेवाला है, जब दंगे के कारण हिंदू स्त्रियाँ अपनी आबरू को बचाने के लिए कुएँ में कूदकर सामूहिक रूप से आत्महत्या करती है । "अनुमान किया जाता है कि लगभग पाँख

लाख हिंदू, मुसलमान और सिक्ख लोग विभाजन के समय हुए दंगों और कत्लेआम में दोनों तरफ मारे गए थे । हजारों की संख्या में स्त्रियाँ बेइज्जत की गयी । सैंकडों ने अपनी इज्जत बचाने के लिए खुदकुशी कर ली, तो कइयों को खुद उनके घरवालों ने मार डाला यह भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास का सबसे कलंकित अध्याय है ।"[18]

लेखक की कहीं बात का फिल्मकार ने बड़ी सजीवता से अंकन किया है । इसके अलावा फिल्मकार ने पात्रों की दृष्टि से नत्थू, हरनामसिंह, कश्मीरीलाल, जनरल रघुनाथ, साहनवाज, लक्ष्मी नारायणलाल और रिचर्ड आदि के माध्यम से लेखक की कहीं बात को और तत्कालीन आर्थिक चेतना को भी दर्शाया है । रिचर्ड अंग्रेजी शासक का प्रतीक है । निर्देशक गोविंद निहलानी ने 'तमस' उपन्यास की कुछ घटनाओं को छोड़ दिया है तो कुछ नवीन घटनाओं को जोड़ दिया है । जैसे-मीटिंग में अलग-अलग समुदायों के नेता अमन स्थापित करने के विषय पर बातचीत करते है और रेडियो पर यह समाचार सुनने में आता है कि विभाजन का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया है तब जनरल सिंह का स्तब्ध होकर पूछना की गाँधीजी के उस वचन का क्या हुआ जो वह कहा करते थे कि 'पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा' । यह दृश्य गोविंद निहलानी की अपनी उद्‌भावना है । नत्थू की अपाहिज माँ को भी निर्देशक ने अपनी कल्पना से ही लिया है । नत्थू की पत्नी का नाम भी कल्पित ही है । गुरूद्वारे में गुरूबानी करनेवाले रवाबियों को भी निहलानीजी ने ही लिया है । उपन्यास में मुस्लिम युवकों द्वारा सिक्ख युवक इकबालसिंह को अमानवीय तरीके से मुसलमान बनाने का प्रसंग, दूसरा वार्तालाप प्रसंग जिसमें दस-बारह मुसलमान दरींदे एक हिंदू लड़की का बारी-बारी बलात्कार करते है और उसके मर जाने के बाद अपने द्वारा किये गये क्रूर कर्म को बड़े गर्व के साथ निर्लज्जता से एक-दूसरे को सुनाते हैं । इन दो प्रसंगों को निहलानी जी ने फिल्म में नहीं दिखाया । और उन्होंने यह अच्छा ही किया कि इतने बर्बर दृश्य फिल्म में नहीं लिए। उपन्यास में नत्थू की उपस्थिति इतनी प्रभावशाली नहीं है, जितनी की फिल्म में दिखाई देती है । फिल्म में निर्देशक ने उसे एक अपराध भाव से जकड़ा हुआ दिखाया है । वह शुरू से अंत तक स्वयं

को अपराधी समझता है । अंत में नत्थू की पत्नी द्वारा लाशों के बीच अपने पति की लाश खोजने का दृश्य भी कल्पित है ।

भीष्म साहनी का उपन्यास हमें यह बताता है कि धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर मानवता की हत्या होती है । धर्म और सम्प्रदाय निजी स्वार्थों के लिए बड़े प्रभावशाली हथियार हैं । गोविंद निहलानी जी ने इन घातक हथियारों को उनके सही रूप में देश के कोने-कोने तक सबके सामने प्रस्तुत किया । गोविंदजी अपने एक साक्षात्कार में बताते हैं- ''1988 में 'तमस' फिल्म बनी । आजादी के बाद पहली बार साम्प्रदायिकता को लेकर पूरे देश में इतने महिनों में एक ओपन बहस चली । अलग-अलग विचार सामने आए । तो ऐसे लगा कि एक गुब्बार था देश के एक जनमानस में जो एक बार खुलकर बाहर आया और उसके ऊपर खूब चर्चा हुई । ... मैं पुलिस संरक्षण में था आठ हफ्ते तक । लोक मुझे मारने आए, पुलिस ने बचाया । कई जगह प्रदर्शन हुए । यहाँ कई लोग मेरे समर्थन में खड़े हुए । प्रोग्रेसिव्ह ट्रेड यूनियन्स, स्टुडेंट आर्गेनाइजेशन्स उन्होंने ह्यूमन चैन बनाई थी। फ्लोरा फाउंटन पर धरना हुआ था । टेलीविजन पर आनेवाली एक छोटी-सी फिल्म को लेकर देश में इतनी बड़ी चर्चा हुई । और मेरा अनुभव इसमें यह रहा कि अच्छा हुआ खुलकर चीजें डिस्कस हुई और नेशनल लेवल पर डिस्कस हुई।''[19]

इस प्रकार गोविंद निहलानी 'तमस' उपन्यास का फिल्मांकन करने में पूरी तरह से सफल रहे है । उन्होंने कृति के लेखक को भी फिल्म की प्रक्रिया में सम्मिलित किया था । फिल्म में भीष्म साहनी द्वारा निभाया गया हरनामसिंह का किरदार भी दर्शकों के हृदय में उतर जाता है । इस फिल्म में ओमपुरी ने नायक और दीपा साही ने नायिका की भूमिका निभाई हैं। 'तमस' फिल्म को कई राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कारों से सम्मानित किया गया ।

4.1.1.17 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' का फिल्मांकन :

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' हिंदी के सुप्रसिध्द लेखक धर्मवीर भारती का एक प्रयोगधर्मी उपन्यास है । इस नए ढ़ंग के उपन्यास पर हिंदी सिनेमा के सुप्रसिध्द निर्देशक श्याम बेनेगल

ने सन् 1992 में इसी नाम से फिल्म बनाई । इस उपन्यास का एक श्रेष्ठ फिल्मांकन करने में वे पूरी तरह से सफल रहे है । ''सूरज का सातवाँ घोड़ा' शिल्प की दृष्टि से एक अद्भूत फिल्म थी । हिंदी साहित्य की भी उतनी ही अद्भुत पुस्तक को सिनेमा में रूपांतरित करने का कार्य श्याम बेनेगल जैसे कुशल निर्देशक ही कर सकते थे । किसी पुस्तक पर फिल्म बनाने का जोखिम उठाना और फिर उसे निभा ले जाना तकनीक को साध लेने का श्रेष्ठ साक्ष्य है । ...अंततः जब फिल्म बनी तो भारती जी उससे पूर्णतः संतुष्ट एवं सहमत थे । जो अपने आप में एक ऐतिहासिक घटना है ।''[20]

प्रकाशन के बाद अपनी अनोखी कथा-शैली के कारण 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास काफी चर्चा में रहा । इसकी कथा-शैली पर टिप्पणी करते हुए उपन्यास की भूमिका में प्रसिध्द हिंदी साहित्यकार अज्ञेय ने कहा -''सबसे पहली बात है उसका गठन बहुत सीधी, बहुत सादी, पुराने ढ़ंग की-बहुत पुराने, जैसा आप बचपन से जानते है- अलफलैला वाला ढंग, पंचतन्त्र वाला ढंग, बोकेच्छियों वाला ढ़ंग, जिसमें रोज किस्सागोई की मजलिस जुटती है, फिर कहानी में से कहानी निकलती है ।''[21] इस प्रकार अज्ञेय जैसे प्रयोगशील रचनाकार ने इसे उपन्यास के क्षेत्र में एक नया प्रयोग कहकर पारंपरिक ढाँचे पर लिखे जानेवाले उपन्यासों से अलग, नई तकनीक एवं नए अंदाज का उपन्यास कहा । इस उपन्यास का सम्पूर्ण कथ्य निम्न-मध्यवर्ग के जीवन-मूल्यों, विसंगतियों, कुंठाओं, दमित इच्छाओं एवं विद्रुपताओं के इर्द-गिर्द बुना हुआ है । इस उपन्यास में अलग-अलग छह कहानियाँ है, जिनका स्वतंत्र अस्तित्व है। साथ ही इन सभी कहानियों में परस्पर सूत्रबध्दता भी है । इन सभी कहानियों का संबंध उपन्यास के मुख पात्र माणिक मुल्ला से है । उपन्यास में कथाकार पाठक का परिचय मुख्य सूत्रधार एवं पात्र माणिक मुल्ला से करवाता है । वे कथाकार एवं उनके मित्रों को छह कहानियाँ सुनाते है जो परस्पर जुड़ी हुई है । जैसे-तन्ना एवं जमुना का असफल प्रेम, माणिक एवं जमुना का प्रेम प्रसंग, माणिक एवं लिली का भावुक प्रेम तथा तन्ना एवं लिली का विवाह, माणिक एवं सती प्रसंग, महेसर दलाल एवं सती प्रसंग आदि । उपन्यास में सभी पात्रों का जीवन एवं

इच्छाएँ परस्पर सम्बध्द है । "सूरज का सातवाँ घोड़ा एक कहानी में अनेक कहानियाँ नहीं, अनेक कहानियों में एक कहानी हैं ।"[22]

इस उपन्यास पर आधारित फिल्म के सफल निर्माण को देखते हुए हमें श्याम बेनेगल के उच्चकोटि के निर्देशक होने का पता चलता है । उपन्यास की मूल आत्मा को समझकर उन्होने परिवेश, चरित्रों एवं तत्कालीन समाज को अपनी सृजनशीलता एवं समझ के साथ तार्किक रूप से साकार किया है । बचपन के संगी-साथी तन्ना एवं जमुना का प्रेम एक टीस के साथ समाप्त हो जाता है । दहेज न जुटा पाने के कारण जमुना की शादी एक बूढ़े विधुर जमींदार से हो जाती है । जो उसकी बाप की उम्र का है । तन्ना की शादी भी उससे अधिक पढ़ी-लिखी लड़की से हो जाती है । तन्ना का पिता महेसर दलाल स्त्री लंपट, धूर्त और मक्कार आदमी है । वह तन्ना को हमेशा दबाकर रखता है । तन्ना की माँ की मृत्यु हो जाने के बाद उसके पिता ने एक औरत को घर में रखैल बनाकर रखा है । माणिक मुल्ला क्रमशः जमुना, लिली एवं सती से प्यार करते हैं, परन्तु प्यार को निभाने का साहस उनमें नहीं है । जमुना को बेटा होने के बाद बूढ़े जमींदार की मृत्यु हो जाती है और वह विधवा जीवन को अपनाकर अपने बेटे के लिए जीने लगती है । तन्ना और लिली का वैवाहिक एवं पारिवारिक जीवन कलहपूर्ण हो जाता है । लिली भी एक संतान को जन्म देती हे । तन्ना की रेल की पटरी पर दुर्घटना के बाद मृत्यु हो जाती है । सती मणिक के मोहल्ले में अपने अपाहिज फौजी चाचा चमनलाल के साथ आकर रहती है । सती साबून बनाकर बेचती है, जिससे घर चलता है। महेसर दलाल की बुरी नजर सती पर पड़ती है । वह उसे पाने के लिए बेताब हो उठता है । सती उसे घास नहीं ड़ालती । फिर धूर्तता से महेसर उसके अपाहिज चाचा को रूपये देकर सती को खरीद लेता है । सती इसका विरोध करती है और आधी रात में माणिक के घर सहायता माँगने आती है । माणिक अपने बड़े भाई की सहायता से महेसर दलाल और उसके चाचा को बुलाता हैं । सती का विश्वास टूट जाता है । बदनामी होती देख चमनलाल सती के साथ रात में ही मोहल्ला छोड़ देता है । वर्षों बाद माणिक को एक दिन अचानक सती एक बच्चे एवं चाचा चमनलाल के साथ भीख माँगती दिखाई पड़ती है । माणिक को देखकर वह झट से मुँह

चुराकर वहाँ से लौटती है । माणिक देखता ही रह जाता है । इस प्रकार आपस मे उलझी प्रेम कथाओं का यहां समापन हो जाता है ।

उपर्युक्त वर्णित घटनाक्रमों को निर्देशक ने पर्दे पर ज्यों-का-त्यों उतारा है । बेनेगल ने उपन्यास की भाँति फिल्म का प्रारम्भ लेखक द्वारा माणिक मुल्ला एवं उनके घर में लगानेवाली गोष्ठीयों को स्मरण करते हुए किया है । लेकिन उपन्यास की शुरूआत और फिल्म के प्रथम दृश्य में पर्याप्त भिन्नता है । उपन्यास में कथाकार जो कि स्वयं पात्र भी है, उनके चरित्र का विस्तार फिल्म में हुआ है वह उपन्यास में अव्यक्त है । साहित्य एवं कला के प्रति उनकी रूचि के साथ फिल्म का आरम्भ होता है । यहाँ निर्देशक की रचनाधर्मिता का परिचय मिलता है । वे उपन्यास में वर्णित घटनाक्रमों को अपनी दृष्टि के सहज समन्वय के साथ प्रस्तुत करते हैं । फिल्म के कई दृश्य बेनेगल की रचनात्मकता के साथ-साथ मूल कृति के साथ उनकी एकरूपता का परिचय देते हैं । उन्होंने फिल्म में सर्वत्र मूल उपन्यास की ही भाषा को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । फिल्मकार बेनेगल ने माणिक मुल्ला को छोड़कर अन्य सभी पात्रों को मूल कथ्य के अनुरूप ही फिल्म में उकेरा है । उपन्यास के माध्यम से कथाकार ने निम्नमध्यवर्ग के लोगों के जीवन के कटु सत्यों को उद्घाटित करने का जो प्रयास किया है, उसे बेनेगल ने फिल्म में मूर्त रूप देने की कोशिश की है । पारस्पारिक सम्बन्धों पर पूँजी के प्रभाव की छाया प्रत्येक पात्र के जीवन को संचलित करती प्रतीत होती है । “देखो यह कहानियाँ वास्तव में प्रेम नहीं वरन् उस जिंदगी का चित्रण करती है जिसे आज निम्नमध्यवर्ग जी रहा है । उसमें प्रेम से ज्यादा कहीं महत्वपूर्ण हो गया है आज का आर्थिक संघर्ष, नैतिक विशृंखलता, इसलिए इतना अनाचार, निराशा, कटुता और अँधेरा मध्यवर्ग पर छा गया है ।”[23] फिल्म के पात्रों का जीवन इसी पूंजी से संचालित होता है । जमुना एवं तन्ना की शादी न हो पाना, जमुना का बेमेल विवाह, तन्ना व लिली का विवाह, महेसर दलाल और चमनलाल का चारित्रिक पतन एवं सती का त्रासदीपूर्ण जीवन आदि । बेनेगल ने फिल्म में इसी निम्नमध्यवर्ग के बेरंग व वास्तविक चेहरे को दिखाया है ।

उपन्यास एवं फिल्म में कहानी का निष्कर्षवादी अन्त इस प्रकार वर्णित है -"जो लोग सुखान्त उपन्यास के प्रेमी है वे जमुना के सुखद वैधव्य से प्रसन्न हों, स्वर्ग में तन्ना और जमुना के मिलन पर प्रसन्न हों, लिली के विवाह से प्रसन्न हों, और सती के चाकू से माणिक मुल्ला की जान बच जाने से प्रसन्न हों, और जो लोग दुखान्त के प्रेमी हैं वे सती के भिखारी जीवन पर दुःखी हों, तन्ना की रेलदुर्घटना पर दुःखी हों, लिली और माणिक मुल्ला के अनन्त विरह पर दुःखी हो ।"[24]

इस फिल्म में रंजीत कपूर, अमरीश पुरी, के.के.रैना, वीरेन्द्र सक्सेना, ललित तिवारी, रघुवीर यादव, राजू बजाज, नीना गुप्ता, पल्लवी जोशी, हिमानी शिवपुरी और राजेश्वरी सचदेव जैसे कलाकारों ने पात्रानुकूल अभिनय किया । इसके फलस्वरूप सन् 1993 में 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' इस फिल्म को श्रेष्ठ फिल्म के रूप में राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया ।

4.1.1.18 'नौकर की कमीज' का फिल्मांकन

विनोद कुमार शुक्ल के बहुचर्चित उपन्यास 'नौकर की कमीज' पर निर्देशक मणि कौल ने इसी नाम से फिल्म का निर्माण किया । यह फिल्म पूंजी तले पिसते एक आम निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति की कहानी है जो स्वतन्त्र होकर भी स्वतन्त्र नहीं है । जो इस गुलामी की जंजीर में खुद को हर समय जकड़ा हुआ पाता है और इससे आजाद होना चाहता है । वह निम्न मध्यवर्गीय आदमी संतू बाबू है जो दफ्तर में एक मामूली क्लर्क की हैसियत से काम करता है । आय कम होने के कारण वे एक छोटे-से किराये के मकान में अपनी पत्नी के साथ रह रहे है । उनकी पत्नी के पाँव भारी है । बारीश के दिनों में पानी घर में यहाँ-वहाँ टप-टप गिरता रहता है । जिसकी वजह से कई मुश्किलों का सामना करना पड़ता है । गर्मी के दिनों कमरा तपकर इतना गर्म होता है कि उनकी गर्भवती पत्नी को साँस लेना कठिण हो जाता है ।

फिल्म की कहानी संक्षिप्त है । संतू बाबू के दफ्तर के साहब के पास एक कमीज है जो उनका पहला नौकर छोड़ गया था । बड़े बाबू साहब के लिए नए नौकर की तलाश करते

हैं और अंततः उस कमीज को संतू बाबू को पहना देते हैं, जो साहब के घर का काम करने लगे है । संतू बाबू इसे पहनने से इनकार करते है और कमीज को फाड़कर उसके चिथड़े-चिथड़े कर देते है । संतू बाबू कमजोर है लेकिन वे अपनी निर्धनता को अपनी नियती का फेर नहीं मानते हैं । उन्हें इस बात का पता है कि जीवन की मूलभूत जरूरतों के अभाव में आदमी का उत्पीड़न किस प्रकार किया जाता है और किस तरह वह गुलाम होने के लिए अभिशप्त होता है । ''उपन्यास की तुलना में फिल्म में प्रसंगों और दृश्यों की अन्विति ज्यादा चुस्त और सुसंगत है । इस फिल्म में संतू बाबू की कोठरी कस्बाई हाट बाजार दफ्तर, वीरान सडकें, अफसर का बंगला, बाग-बगीचे, कटहल का पेड़ आदि का फिल्मांकन जहां एक ओर वस्तुपरक और प्रामाणिक है वहीं दूसरी ओर बेहद मांसल और सजीव भी । यह फिल्म पूरी तरह से परिवेशनिष्ठ है । कस्बे के निम्न मध्यवर्गीय परिवेश की सधन, प्रखर और संवेदनशील प्रस्तुति इस फिल्म में हुई है ।''[25] उपन्यास की तरह फिल्म में भी लोकतंत्र की पेचदिगियों और भयावहता का परिचय मिलता है ।

'नौकर की कमीज' फिल्म उपन्यास का सफल फिल्मांकन है ।

4.1.2 हिंदी कहानियों पर आधारित हिंदी फिल्में :

हिंदी साहित्य में लिखी गई कहानियों की संख्या हजारों-लाखों में होंगी । आज भी हिंदी कहानी विधा की लोकप्रियता में कोई कमी नहीं आयी है । कहानी सृजन का यह सिलसिला आज भी अनवरत जारी है । हिंदी साहित्य में इतनी सारी कहानियाँ होते हुए हमारे हिंदी फिल्म निर्देशक इनके प्रति उदासीन दिखाई देते हैं, क्योंकि अब तक हिंदी की केवल बीस कहानियों का फिल्मांकन ही किया गया है । जैसा की पीछे कहा गया है कि यह कोई अंतिम आँकड़ा नहीं है । इसमें थोडा-बहुत और इजाफा भी हो सकता है । अनुसंधान में इतनी ही कहानियाँ नजर में आयी है जिनपर फिल्में बनी है । 'बीस' का यह आँकड़ा बहुत ही छोटा है, लेकिन हिंदी की महत्वपूर्ण कहानियों पर ये फिल्में बनी हैं इसे नजरंदाज नहीं किया जा

सकता । इन कहानियों का फिल्मांकन किस तरह से किया गया है इसे हम निम्न रूप से समझने की कोशिश करेंगे ।

4.1.2.1 'दो बैलों की कथा' पर आधारित फिल्म 'हीरा मोती' :

फिल्म निर्देशक कृष्ण चोपड़ा ने प्रेमचंद की कहानी 'दो बैलों की कथा' पर आधारित 'हीरा मोती' फिल्म का निर्माण किया । यह इस कहानी का सफल फिल्मांकन साबित हुआ । साहित्य पर बनी फिल्मों में यह एक उत्कृष्ट फिल्म कही जा सकती है । यह कहानी एक किसान के दो बैलों हीरा और मोती के बारे में है जो पशु होकर भी स्वतंत्रता एवं मानव प्रेम का महत्त्व समझते हैं, प्रेमचंद ने इस कहानी के जरिए यह बताने का प्रयास किया है कि पशु बोल नहीं सकते फिर भी अन्याय और शोषण का विरोध करते हैं लेकिन मनुष्य बुद्धिमान प्राणी होकर भी सबकुछ चुपचाप सहता है, अवसर मिलने पर भी विरोध नहीं करता ।

निर्देशक कहानी की मूल संवेदना को समझने में सफल रहा है । गाँव के वातावरण का हू-ब-हू चित्रण इस फिल्म में किया गया है । फिल्म के पात्र की पूरी तरह से देहाती रंग में रंगे हुए है । फिल्म के संवाद भी उत्कृष्ट बन पड़े है । पार्श्वसंगीत के रूप मे लोकसंगीत का प्रयोग अच्छा हुआ है । बैलों से अच्छा काम लिया गया है । फिल्म का हर दृश्य बताता है कि निर्देशक ने कहानी के फिल्मांतरण में कितनी मेहनत की है । अतः इसमें कोई संदेह नहीं की फिल्म हीरा-मोती प्रेमचंद की कहानी का सफल फिल्मांकन है ।

4.1.2.2 'शतरंज के खिलाड़ी' का फिल्मांकन :

हिंदी के प्रसिध्द साहित्यकार प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' पर इसी नाम से विश्व प्रसिध्द फिल्म निर्देशक सत्यजित रे ने फिल्म का निर्माण किया है । कहानी छोटी है और उसमें इतिहास परोक्ष रूप में ही झाँकता है । कहानी में आयी हुई इस ऐतिहासिकता को एक महत्वपूर्ण काल भी कहा जा सकता है । क्योंकि उस समय अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार बड़ी तेजी से हो रहा था । हर राज्य में अंग्रेज सरकार ने रेसिडेंट जनरल भेज दिए थे । लॉर्ड डलहौसी का शिकंजा भारतीय राजाओं पर कसता ही जा रहा था । कहानी में बादशाह और

नवाबों की विलासिता और उसके सामायिक परिस्थितियों को प्रेमचंद ने प्रमुखता से उजागर किया है ।

प्रेमचंद की मूल कहानी को देखे तो वह वाजिद अली शाह के समय और दो नवाबों के बीच चल रहे शतरंज के खेल के बीच उभरती है । मिरजा सज्जादअली और मीर रौशनअली दोनों लखनऊ के नवाब और दोनों शतरंज के खेल मे व्यस्त रहते है । यहाँ तक की खाना-पीना भूल जाते हैं । उनके इस शतरंज प्रेम से उनकी पत्नियाँ और नौकर परेशान हैं। एक बार तो मिरजा की पत्नी गुस्से में शतरंज की बाजी को भी उठाकर फेंक देती हैं । इधर कहानी में इन सबके साथ देश की राजनीतिक दुरावस्था का वर्णन भी होता चलता है । किस तरह आम आदमी का घर से निकलना मुश्किल हो गया है । शतरंज की महफिल मिरजा के घर से उठकर मीर के घर जमती है । वहाँ भी उनसे मीर की पत्नी, नौकर, मुहल्लेवाले परेशान है । बादशाह का एक सवार मीर को बुलाने घर आता है, वह मीर की पत्नी की एक सोची समझी चाल है । उसके बाद दोनों मित्र गोमती किनारे बनी वीरान मस्जिद में चले जाते है वही शतरंज खेलते है । कहानी में इन सबकी अभिव्यक्ति शब्द चित्रों के माध्यम से हुई है। जहाँ पर आपसी संवाद नहीं है, वहाँ पर भी ऐसे शब्द चित्र बहुत जगह पर आये हैं । 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी चार खण्डों में विभाजित है । चारों खण्डों की परिस्थितियों और घटनाएँ एक-दूसरे से गुथी हुई है ।

सत्यजित रे ने मूल कहानी को तो लिया ही है लेकिन इसकी पूरक और समानान्तर रेसिडेंट जनरल औट्रम की कहानी का भी उन्होंने विकास किया है । जनरल औट्रम से संबंधित प्रसंग कहानी को गहरी सार्थकता प्रदान करते हैं । जिससे दर्शक आसानी से समझ जाता है कि भारतीय रियासतों और बिखरे हुए राज्यों को अंग्रेजी साम्राज्य में मिलाने की अंग्रेजों की गहरी चाल थी और जिसकी योजनाएँ लंदन में लॉर्ड डलहौसी के सामने बन गई थी । मूल कहानी में ये प्रसंग नहीं है लेकिन सत्यजित रे यहाँ कहानी और फिल्म को ऐतिहासिकता में परिवर्तित कर देते हैं ।

फिल्म का आरंभ मिरजा और मीर के शतरंज खेलने से होता है । पार्श्व में ध्वनि उभर रही है- ''इन बहादुर सिपहसालारों के हाथ तो देखिए । भले ही इन हाथों ने असली हथियार न उठाएँ हो मगर जिस अंदाज से इस चकोर मैदान-ए-जंग में अपनी फौज बढ़ा रहे है । लेकिन जंग कौन-सी असली है । यहाँ न खून की नदियाँ बहेंगी न सर धड़ की बाजी लगेगी और न ही किसी सल्तनत का पासा पलटा जाएगा । मिरजा सज्जादअली और मीर रौशन अली लड़ नहीं खेल रहे है । तभी शतरंज जैसे पुराने और अजीब खेल को अपना मैदान बना रखा है ।''[26] और इसके बाद मिरजा मीर को कहते है- 'शह' इन सबसे पीछे अय्याशी को संगीत देते स्वर हैं । मिरजा की चिलम खत्म होती है । वे मकबुल मियाँ को आवाज देते है । हुक्के को परदे पर दिखाया जाता है । हुक्का नवाबों के जमाने की निशानी है । मैदान में पतंग का खेल जारी है । मुर्गों की लड़ाई चल रही है, काफी भीड़ उमड़ी है, लोगों का होहल्ला है। दृश्य बदलता है । संगीत जारी है । इस दृश्य में हमें बादशाह का शाही आसन दिखाई देता है जो बहुत ही कलापूर्ण है । पार्श्वध्वनि ''इस शौकिन रियाया के सरताज है नवाब वाजिद अली शाह जिन्हें राजकाज के अलावा हर तरह का शौक है ।''[27] नवाब वाजिद अली शाह के दरबार में नाच चल रहा है । नर्तकियों के बीच वे घिरे हुए है । नाचनेवाली गा रही है-

''जाने आलम तख्त मुबारक -2

युग-युग जियो सदा बिराजो-2''

दरअसल यहाँ मूल कहानी के आरंभ में दिए गए शब्द वाजिद अली शाह का समय था । लखनऊ विलासिता में डूबा हुआ था । छोटे-बड़े, गरीब-अमीर सभी विलासिता में डूबे हुए थे। पूरी तरह सार्थक होते हैं । इन शब्दों को रे ने फिल्म में दृश्य-बिंबों में बदला है, जो बिल्कुल वास्तविकता लिए हुए है । मूल कहानी से अलग रे ने मुंशी नंदलाल और कल्लू के चरित्रों को भी गढ़ा है । यह दोनों चरित्र कहानी के पूरक लगते हैं । मुंशी नंदलाल के चरित्र से मिरजा और मीर की खोखली वीरता का आभास होता है । अय्याशी के वातावरण में जीते हुए दोनों नवाबों को अंग्रेजों के फौज की कोई चिंता नहीं है । अपने घर की चिंता नहीं है । मिरजा की पत्नी का अन्तर्द्वन्द्व भी फिल्म में स्पष्ट नजर आता है ।

मूल कहानी के तीसरे खण्ड को हम देखें तो वहाँ ऐतिहासिक तथ्य नजर आते हैं । लखनऊ में अंग्रेजी फौज प्रवेश कर रही हैं। लेकिन मिरजा और मीर खेल में व्यस्त हैं । मीर को थोडी बहुत चिंता इस बात की है, लेकिन मीर की यह चिंता लखनऊ में अंग्रेजों से लोहा लेने की बिल्कुल नहीं है बल्कि स्वयं दोनों के सुरक्षित रहने की है । उधर नवाब वाजिद अली शाह पकड़ लिए गए थे और इसी दौरान मिरजा, मीर एक दूसरे को 'शह और मात' दे रहे थे। दरअसल एक विलासिता सर्वत्र व्याप्त है, जो कहानी से कहीं अधिक फिल्म में दिखाई देती है ।

वाजिद अली शाह का विलासिप्रिय रूप कहानी से भिन्न फिल्म की विशेषता है । फिल्म निर्देशक वाजिद अली शाह के माध्यम से उसकी चरम विकृति को दिखाते है । कहानीकार ने मिरजा और मीर के निट्ठल्लेपन के द्वारा इस विकृति को हमारे सामने रखा है । यहाँ ध्यान देने की बात है कि फिल्म में मिरजा-मीर, वाजिद अली शाह तथा अंग्रेजों का त्रिकोण उपस्थित किया गया है । फिल्म निर्देशक इस त्रिकोण के माध्यम से एक युग के इतिहास को कल्पना का सहारा लेकर हमारे सामने प्रस्तुत कर रहा है । कहानी में ऐतिहासिक अंश दब-सा गया है या प्रमुखता से सामने नहीं आता । फिल्म में वह ऐतिहासिक पक्ष पूरी तरह से उद्घाटित होता है । सत्यजित रे ने प्रेमचंद की कहानी में वर्णन किए हुए ऐतिहासिक वातावरण को तथ्यों के आधार पर इतिहास सम्मत बना दिया है । प्रेमचंद वाजिद अली शाह, रेसिडेंट और अंग्रेज फौज का उल्लेख तो करते है परंतु अपनी कल्पना से वे ऐतिहासिक तथ्यों को दूर रखते है । सत्यजिर रे ने कल्पना और तथ्य दोनों को फिल्म में दिखाया है । इस कारण फिल्म में शतरंज का खेल केवल खेल नहीं रह जाता उसका विस्तार तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक जीवन तक हो जाता है । सभी पात्र मुहरें दिखाई देती है और सभी घटनाएँ शतरंज के चालों की तरह क्रियाशील अनुभूत होती है । सत्यजिर रे का इतिहास और कल्पना का समन्वय फिल्म को अविस्मरणीय बना देता है ।

कहानी के तीसरे खण्ड में वर्णित गोमती के किनारे के वीरान मस्जिद के प्रसंग को भी निर्देशक ने फिल्म में परिवर्तित कर दिया है । रे ने वहाँ 'कल्लू' नामक पात्र की सृष्टि की है।

जिससे कहानी और फिल्म का मूल कथ्य बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है । कल्लू मिरजा और मीर को अपने घर ले जाता है । दोनों के पूछने पर कल्लू बताता है कि सभी लोग अंग्रेजों की फौज से ड़रकर गाँव छोड़कर गये हैं । कल्लू के इस कथन से कहानी में आयी हुई तत्कालीन परिस्थितियाँ भी परिलक्षित होती है, कल्लू का यहाँ होना मूल कहानी का पूरक है । मिरजा कल्लू से पूछते है- ''तुम्हारे घर पर कौन-कौन है ? कल्लू-कोनों नाहीं, सब भाग लिए 'सीतापुर' मिरजा-क्यों ? कल्लू-गोरी पलटन आ रही हे ना हुजूर, ओ का मार ड़ाले तो ?''[28]

फिल्म के अंत में हम देखते है कि मिरजा और मीर का शतरंज खेल में आपसी झगड़ा होने पर मीर मिरजा पर पिस्तौल से गोली चला देता है जो उसकी बाँह में लगती है । दूसरी ओर गाँव के रास्ते पर अंग्रेजों की फौज चली आ रही है । यह सब कल्लू मिरजा को कहता है- ''गोरे लोग हमारा बादशाह हुई गवा । कोनों लड़त नाही, बंदूक कोनों नाही चलावत..''[29] पार्श्व से ध्वनि उभरती है- ''तुम ठीक कह रहे हो कल्लू (अवध का शाम का सूरज डूबने का प्रतिकात्मक दृश्य) ना कोई गोली चलेगी न कोई जंग होगी । वाजिद अली शाह अपना वादा पूरा करेंगे । आज से तीन दिन बाद 7 फरवरी 1856 को अवध पर अंग्रेजी कब्जा हो जाएगा। सुलताने आलम अपनी महबूबा नगरी को हमेशा के लिए छोड़कर चले जाएँगे । लॉर्ड डलहौसी (चित्र दिखया जाता है) आखिरी चेरी हड़प कर चुका होगा ।''[30] यह फिल्म की चरम सीमा है ।

अंग्रेजी फौज जाने के बाद मिरजा-मीर दोनों में फिर मेल हो जाता है । शतरंज की बाजी फिर बिछ जाती है । मिरजा शतरंज की बाजी से 'वजीर' को हटा देता है । प्रतिक रूप में यह अवध से वाजिद अली शाह का सत्ता से हट जाना ही है । इस प्रकार एक महान साहित्यकार की साहित्यकृति का एक महान फिल्मकार जब फिल्म में रूपांतरण करता है तो वह किस तरह अनूठा हो जाता है, इसे हम 'शतरंज के खिलाड़ी' फिल्म के माध्यम से देख सकते हैं ।

4.1.2.3 'सद्‌गति' का फिल्मांकनः

हिंदी के सुप्रसिध्द कहानीकार मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'सद्‌गति' पर भारतीय सिनेमा के महान फिल्म निर्देशक सत्यजित रे ने इसी शीर्षक से फिल्म बनाई । इस कहानी में भारतीय समाज में जाति-पाति के आधार पर होनेवाले भेदभाव एवं छूआछूत की समस्या को बड़े ही यथार्थवादी ढ़ंग से चित्रित किया है । " 'सद्‌गति' में भारतीय समाज में शताब्दियों से अस्पृश्यों या दलितों पर होते आ रहे अत्याचारों को बड़े हृदयविदारक ढ़ंग से दिखाया गया है । अपने सहज सरल अंदाज में प्रेमचंद दलितों की पीड़ा, उनकी गुलाम मानसिकता, ब्राह्मणों की तथाकथित धार्मिकता के बावजूद उनकी भयंकर क्रूरता आदि को हमेशा के लिए पाठक के स्मृतिपटल पर अंकित कर जाते है ।"[31]

'सद्‌गति' कहानी में दुखी और झुरिया गरीब और अछूत पति-पत्नी है । उनकी एक विवाहयोग्य बेटी है धनिया । वे अपनी बेटी के विवाह का शुभ मुहूर्त पंडित घासीराम से निकलवाना चाहते है । लेकिन पंडित की दक्षिणा देने के लिए उनके पास पैसे नहीं है । दुखी पंडित के घर जाने के लिए निकलता है लेकिन खाली हाथ नहीं जाना चाहिए इसलिए घास काटकर ले जाता है । पंडित घासीराम के घर जाने पर वह दुखी की याचना सुनते है और उसे कई तरह के काम बताते है । दुखी भूखा और अशक्त है । लेकिन ना नहीं कह पाता है । उसी हालात में वह बेचारा झाडू लगाने, गोबर लिपने, भूसा रखवाने जैसे काम करता है और अंत में लकडी के एक मोटे गट्‌ठर को धारहीन कुंद कुल्हाड़ी से तोड़ने लगता है । दोपहर की तेज धूप में लस्तपस्त और थका-हारा दुखी अचेत होकर गिर पड़ता है और उसकी उसी जगह मौत हो जाती है । अछूतों की बस्ती में खबर फैलती है, लेकिन पुलिस के भय से गाँव का कोई भी आदमी, दुखी की लाश को नहीं उठाता । दुखी का मृत शरीर कुएँ के पास पड़ा हुआ होने के कारण कोई भी सवर्ण कुएँ से पानी लेने नहीं जाता और कोई रास्ता न होने के कारण भोर के समय में पंडित घासीराम लाश के पाँव में रस्सी फँसाकर बारीश में तर-बतर उसे घसीटते हुए किसी मरे हुए जानवर की तरह गाँव के बाहर छोड़ आता है । और फिर घर आकर नहा-धोकर, गंगाजल छिड़ककर दुखी के शरीर से अपवित्र धरती और अपने अपवित्र

शरीर को पवित्र करता है । उधर गाँव के बाहर पड़ी दुखी की लाश को गिदड़, कुत्ते, कौए नोच-नोचकर खाते हैं । '' 'सद्‌गति' में पहली बार असमानता और अमानवीयता के प्रति सच्चा और बेहद तीखा आक्रोश व्यक्त हुआ है ।''[32]

'सद्‌गति' का सत्यजित रे ने बहुत ही निष्ठपूर्वक फिल्मांकन किया है । मूल कहानी को उन्होंने 'ॲज इट इज' फिल्माने का सफल प्रयास किया है । कहानी के एक-एक वाक्य का अनुसरण रे फिल्म में करते हुए दिखाई देते हैं । फिल्म के आरंभ में दुखी का बीमारी से उठकर जाना एवं भूखे पेट पूरा दिन पंडित घासीराम के घर काम करना और मर जाना मूल कहानी की अपेक्षा अधिक तार्किक एवं विश्वसनीय प्रतीत होता है । ''सत्यजित रे की फिल्म 'सद्‌गति' ब्राह्मणवाद के अत्यन्त घिनौने चरित्र पर अत्यन्त प्रामाणिक ढ़ंग से प्रहार करती है।''[33] अछूत वर्ग और ब्राह्मण वर्ग के पात्र विश्वसनीय प्रतीत होते है । कलाकारों का चयन फिल्म को विश्वनीयता प्रदान करता है । दुखी के रूप में ओमपुरी, झुरीया के रूप में स्मिता पाटील, पंडित घासीराम के रूप में मोहन आगाशे आदि का चयन पात्रानुकूल और उपयुक्त लगता है । दृश्यबंधों के फिल्मांकन में रे ने ब्राह्मणों और अछूतों के सामाकि हैसियत को अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्त किया है । फिल्म में बीमार भूखा दुखी ब्राह्मण की अवज्ञा बिल्कुल नहीं करता । लकड़ी काटने में असमर्थ होते हुए भी, मना नहीं करता विवशतावश रोने लगता है । यह दृश्य फिल्म में स्वाभाविक एवं मार्मिक लगता है । मूल कहानी में कई दृश्य जोड़े भी गए है -जैसे दुखी द्वारा धनिया को छेड़ना, पंडित घासीराम द्वारा पुनर्विवाह करने हेतु प्रवचन देना, फिल्म के प्रारम्भ में दुखी को चक्कर आना आदि दृश्यबंध फिल्म में ब्राह्मणवाद की क्रूरता के रूपक में रावण की विशाल मूर्ति विद्यमान है । ''सद्‌गति में गरीबी और जाति प्रथा की क्रूरता को अपने नग्नतम और भयंकरतम रूप में दिखाया गया है । इसमें सदियों से हो रहें दलितों के शोषण और उसकी गुलाम मानसिकता को ह्रदयविदारक ढ़ंग से दर्शाया गया है ।''[34]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'सद्‌गति' कहानी का बहुत ही सफल फिल्मांकन सत्यजिर रे ने किया है । फिल्म कहानी से कहीं अधिक प्रभाव उत्पन्न करती है । साहित्यिक कहानी पर फिल्मांकन का एक आदर्श 'सद्‌गति' के रूप में रे ने प्रस्तुत किया है । साहित्यिक

रचना के साथ पूरी तरह से मेल खाती हुई और अपनी एक अलग अमिट छाप छोड़नेवाली 'सद्गति' फिल्म हिंदी फिल्मों के इतिहास में एकमेव कही जा सकती है । 'सद्गति' इस साहित्यिक कहानी का सफल फिल्मांकन करने में सत्यजित रे पूरी तरह से कामयाब रहे । यह अपने आप में एक तरह से कामयाब रहे । यह अपने आप में एक अनोखी घटना है ।

4.1.2.4 'उसकी रोटी' का फिल्मांकन :

निर्देशक 'मणि कौल' ने हिंदी के सुप्रसिध्द कथाकार और नाटककार मोहन राकेश कहानी 'उसकी रोटी' पर उसी नाम से अपने जीवन की पहली फिल्म बनाई । "जब यह फिल्म रिलिज हुई तो इसने सबको स्तब्ध कर दिया क्योंकि रूप और आख्यान में यह अब तक के पूरे भारतीय सिनेमा से बिल्कुल भिन्न थी । इस फिल्म में बिम्ब, आख्यान और कार्य व्यापार का सामंजस्य पूर्णतया तोड़ दिया गया था ।"[35]

'उसकी रोटी' कहानी में सुच्चासिंह बस ड्राइवर की पत्नी बालो अपने पति को रोटी देने के लिए बस के अड्डे पर बैठी अपने पति का घंटों इंतजार करती रहती है । बालो बहुत ही सहनशील और शांत स्वभाव की है । इसके विपरित उसका पति सुच्चा सिंह बहुत ही कठोर और पत्थरदिल इंसान है । ड्राइवर की नौकरी होने के कारण वह हप्ते में केवल एक बार घर आता है । उसकी पत्नी बालो को यह भी पता है कि उसके पति ने एक रखैल भी रखी हुई है । वह इसका विरोध नहीं करती । वह इतने में ही खुश है कि उसका पति हर हप्ते ही सही घर तो आता है । निर्देशक मणि कौल ने बालो की मनः स्थिति का बहुत ही संयमित बिबों से चित्रण किया है । बालो हर दिन घंटों बस के अड्डे पर रोटीयाँ लेकर अपने पति का इंतजार करती है । एक दिन उसे पहुँचने में देर हो जाती है । उसका पति जा चुका है । वह वहीं बैठकर रात तक सुच्चा के दूसरे फेरे की प्रतिक्षा करती है, और तरह-तरह के खयालों में खो जाती है । इसका फायदा उठाकर एक कुत्ता उसकी रोटियाँ लेकर भाग जाता है । देर रात उसका पति लौटता है । अपने लिए इतना लंबा इंतजार करनेवाली पत्नी को देखकर उसका

पत्थर दिल पसीज जाता है । बालो कुत्ते के रोटी ले जाने की बात बताती है जिसपर वह हँसता है और दोनों घर लौटते हैं ।

बालो के जीवन में पति का इंतजार करने के अलावा और कुछ नहीं है । उपर से पति उसकी उपेक्षा करता है । इस कारण उसे गहरी उदासी घेर लेती है । उसका जीवन एकाकी और निरस हो जाता है । बालो के इस जीवन का चित्रण मणि कौल ने पूरी निष्ठा के साथ किया है । फिल्म में कहानी पूरी तरह से स्पष्ट नहीं होती । कहानी का क्रम पूरी तरह से बिगाड़ दिया गया है । इस कारण कहानी के आरंभ और अंत का पता नहीं लगता । फिल्म बहुत धीमी गति से आगे सरकती है । यह फिल्म दर्शक के धैर्य की परीक्षा लेने वाली है । कलाकारों के अभिनय के लिए कोई जगह नहीं है । संवाद नाममात्र है । ‘‘ ‘उसकी रोटी’ हिंदी सिनेमा के सारे स्थापित मानदंडों को तोड़नेवाली एक गैर-पारंपारिक फिल्म है लेकिन फिर भी पारंपारिक दृष्टि से विचार करने पर भी ‘उसकी रोटी’ एक श्रेष्ठ फिल्म ही सिध्द होती है । अधिकत्तर भारतीय स्त्रियों के जीवन का सबसे बड़ा सत्य प्रतिक्षा ही है । प्रतिक्षा करते-करते उनके जीवन का सारा उत्साह जाता रहता है । वे उदासी और तटस्थता की जीती जागती मूर्तियाँ बनकर रह जाती हैं । उनके पूरे जीवन में निराशा छा जाती है । ऐसे में उनके हृदय की संवेदनाएँ मर जाती है और बड़े-से-बड़े दुख को भी वे चुपचाप सह जाती है । इसका अर्थ यह नहीं है कि सब औरतें बालो की तरह भावशून्य स्थिति में पहुँच जाती है । मन को हलका करने के लिए वे बातचीत आदि तरीके अपनाती हैं । इस दृष्टि से फिल्म में बालो का चित्रण अतिशोक्तिपूर्ण लग सकता है, किंतु फिर भी मणि कौल ने बालो की पूर्ण भावशून्यता से भारतीय नारी के भयावह यथार्थ को रेखांकित किया है । जिस प्रकार से यह फिल्म बनाई गई है वह एक सर्वथा अप्रत्याशित शैली है ।’’[36]

‘उसकी रोटी’ कहानी पर बनी मणि कौल की फिल्म भारतीय फिल्म की परिपाटी को तोड़नेवाली फिल्म है । साथ ही ‘अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आँचल में है दूध और आँखों में पानी’ इस मैथिलिशरण गुप्त की काव्य पंक्तियों को सार्थक करनेवाली फिल्म है।

इस फिल्म को मोहन राकेश की कहानी का सफल फिल्मांकन भले ही न कहा जाए लेकिन हिंदी फिल्म जगत में सर्वथा नया प्रयोग जरूर कह सकते है ।

4.1.2.5 'तलाश' पर बनी फिल्म 'फिर भी'

कमलेश्वर की कहानी 'तलाश' पर निर्देशक शिवेन्द्र सिन्हा ने 'फिर भी' इस नाम से फिल्म बनाई । यह फिल्म समानांतर फिल्म आंदोलन की एक महत्वपूर्ण कड़ी थी । कमलेश्वर ने इस फिल्म के पटकथा, संवाद लिखे है । 'तलाश' कमलेश्वर की एक मनोवैज्ञानिक कहानी है । जिसमें एक टेलिफोन ऑपरेटर लड़की अपने पिता की मृत्यु के बाद उनकी स्मृतियों में खोई रहती है । किसी बात तक नहीं करती । लड़की अपनी माँ के साथ रहती है । माँ एक शिक्षिका है । लड़की की माँ अपनी बेटी के विपरित पति की मृत्यु के उपरांत नये सिरे से अपना जीवन जीना चाहती है । वह एक शिक्षक साथी से प्रेम करने लगती है । बेटी जवान होकर भी किसी पुरूष से संबंध नहीं बनाना चाहती और उसकी माँ प्रौढ़ावस्था में अपने साथी पुरूष से नया संबंध शुरू करती है । लड़की को यह बर्दाश्त नहीं होता और वह बिना इसका विरोध किए होस्टल में रहने चली जाती है । ''कहानी माँ-बेटी की इसी असामान्य समस्या का मर्मस्पर्शी चित्रण करती है । अंततः बेटी का एक पुरूष से संबंध बनता है और यह पुरूष लड़की को धैर्य और प्रेम से अपने पिता को भुलाने में सहायता करता है । जहाँ तक माँ का संबंध है वह भी अब अपने मानसिक तनाव और दुविधा से मुक्त होकर स्वस्थ जीवन व्यतीत करने लगती है ।''[37]

'फिर भी' फिल्म कथा का आरंभ सुमन और मंजरी की रोजमर्रा की जिंदगी से होता है। फिल्म की कथा का मध्य है सुमन का घर छोड़ना, मंजरी का अपने प्रेमी के साथ घूमने जाना और अंत है मंजरी द्वारा अपने जीवन वास्तविकता को स्वीकारना और 'काम' ज्वार से बाहर निकलना । 'तलाश' कहानी में दो ही पात्र हे तो फिल्म में अनेक नए पात्र आकर जुड़ जाते है, जैसे-अमिताभ, महेन्द्रनाथ, रतन मल्होत्रा तथा इंदिरा पात्रों की बुनावट की दृष्टि से विचार किया जाए तो इस फिल्म की कहानी केवल दो पात्रों के इर्द-गिर्द घूमती है सुमन और मंजरी ।

सुमन जो विधवा माँ की बेटी है और टेलिफोन एक्सचेंज में नौकरी करती है । उसे पुरूष जाति से सख्त नफरत है । वह माँ के हर जायज-नाजायज अरमान पूरे करने में लगी रहती है। इतना ही नहीं तो माँ के वासना ज्वार को शांत करने के लिए रणधीर के साथ घूमने के लिए बाहर गाँव जाने की अनुमति देती है । उसकी काम-वासना इतनी बढ़ गई है कि रात में सुमन ऑफिस ड्युटी जाने पर वह अपने प्रेमी रणधीर को घर पर बुलाती है । सुमन रात की ड्युटी करके सुबह घर आती है, तब अपने फ्लैट के दरवाजे के सामने अधजले सिगारेट के टुकडे पड़े दिखाई देते है । सुमन मंजरी के कमरे में आती हैं तो मंजरी दिन दुनिया से बेखबर बिस्तर पर अस्त-व्यस्त सोई दिखाई देती है । उसके ब्लाउज के उपरी बटन खुले हुए हैं । तकीये पर बड़ा-सा गड्ढा पड़ा हुआ है । उसकी साड़ी अस्त-व्यस्त है । फर्श पर सिगार के कुछ टुकड़े है। इतना देखने पर भी सुमन माँ को जगाती नहीं । वह समझ जाती है कि रातभर कोई घर में था और सुबह होते ही चला गया है । लेकिन इतना कुछ होने पर भी सुमन को कुछ गलत नहीं लगता क्योंकि सुमन के पापा उसे कहकर गये थे कि उनके जाने के बाद मंजरी की हर खुशी को पूरा करना । अर्थात् यहाँ माँ की जगह बेटी ने ली है ।

फिल्म की कथा समकालीन मुंबई शहर की संस्कृति, आधुनिकता, रहन-सहन, विचारधारा को प्रकट करती है । आधुनिकता के कारण समाज में आए बदलाव इस कथा से व्यक्त होते हैं । पति के मर जाने के बाद अपना जीवन बच्चों को समर्पित करना भारतीय माँ की परंपरा है, लेकिन इस फिल्म में माँ अपनी जवान बेटी के बारे में न सोचकर अपनी ही दमित वासनाओं को शांत करने के प्रयास में लगी हुई है । सारे परिवर्तन आधुनिकता के ही है। साथ-साथ आधुनिकता के कारण मनुष्य के जीवन में आए बदलावों को भी यह फिल्म रेखांकित करती है ।

4.1.2.6 'पति, पत्नी और वह' पर आधारित फिल्म 'रंग बिरंगी'

कमलेश्वर की कहानी 'पति, पत्नी और वह' पर निर्देशक ऋषिकेश मुखर्जी ने 'तलाश' फिल्म का निर्माण किया । इस फिल्म की कथा अजय शर्मा के इर्द-गिर्द घूमती है । जिसका

किरदार अमोल पालेकर ने निभाया है । अजय शर्मा एक व्यवसायी है । सात साल में अपनी पत्नी निर्मला के साथ उसका परिवार फलता-फूलता है । रवि नामक उसका दोस्त विदेश से लौटता है, तब निर्मला उससे अपने पति की शिकायत करती है कि अजय घर में समय नहीं देता । इस पर रवि, अजय के रवैये को बदलने के लिए एक नाटक खेलना शुरू करता है । अजय के ऑफिस में एक युवा सहाय्यक आयी है जिसका नाम है अनिता । रवि अजय को उससे छेड़छाड़ कर अपने प्रति आकर्षित करने के लिए कहता है । एक दिन अजय अनिता से अपनी पत्नी बिमार होने की बात बतलाता है, उससे अनिता कि दिल में उसके प्रति हमदर्दी बढ़ने लगती है । यह हमदर्दी होटल में खाना खाने से ड्रेस खरीदने तक बढ़ती है । लेकिन अजय में एक परिवर्तन दिखाई देता है कि जैसे ही अजय अनिता को होटल में खाना खाने ले जाता है, वैसे ही निर्मला को भी लेकर जाता है । अनिता जैसा ड्रेस निर्मला को भी लाता है । यह परिवर्तन देख निर्मला खुश होती है । लेकिन इधर इन सारी हरकतों से अनिता का प्रेमी जीत नाराज होता है । अजय और निर्मला के जीवन में पुनः एक बार रोमांस आता है, जो सात साल पहले था । अनिता जीत की नाराजगी दूर करते हुए कहती है- ''क्या करूँ जीत..अजय बड़े अच्छे आदमी है...जब भी उनके साथ होती हूँ... लगता है मेरा ऐसा एक बड़ा भैया क्यों न हो...शादी के एक साल बाद ही उनकी बीवी बिमार पड़ी''[38] इसपर चिढ़ते हुए जीत अजय की पत्नी को फोन कर असलियत का पता करने की बात छेड़ता है । फोन पर यह बात स्पष्ट होती है कि निर्मला बिमार नहीं है । अनिता निर्मला को मिलने उसके घर जाती है, तब निर्मला वही ड्रेस दिखाती है जो उसके शरीर पर था । निर्मला अनिता से कहती है- ''मैं अपने पति को जान गई हूँ...मेरे पति आपके साथ नहीं मेरे साथ फ्लर्ट कर रहे है...आपकी वजह से मेरे खोए हुए सात साल वापिस मिले है... आपकी वजह से मेरी जिंदगी में खुशियाँ आयी है... जो चल रहा है चलने दीजिए ।''[39]

रवि अपनी चालों को और तेज करता है । अनिता को अजय के प्रति झूठे प्यार का नाटक करवाता है । इधर रवि निर्मला के द्वारा अजय को तड़पाने के लिए ऑफिस में नौकरी करने का नाटक करवाता है । निर्मला अपने बॉस की पत्नी की वही कहानी अजय को बताती

है, जैसे अजय ने अनिता से कही थी । एक दिन रवि जीत को बॉस बनाकर एक होटल में निर्मला के साथ खाना खाने बिठाता है । वहीं दृश्य अजय देखता है और घर में झगड़ा होता है । झगड़ा होनेपर निर्मला तलाक की माँग कर घर छोड़कर चली जाती है । रवि जीत को धुरंधर भाटावडेकर बनाकर उसे अनिता के साथ की तस्वीरे दिखाकर ब्लैकमेल करने भेजता है। इधर निर्मला को लाने के लिए अजय उसके मायके जाता है, तब निर्मला उसकी सच्चाई जानकर उसे माफ कर देती है ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि फिल्म संवेदनशील प्रश्न को उठाती है । हर मनुष्य जिंदगी में नयापन चाहता है । यही नयापन मनुष्य की जिंदगी को रंग बिंरगी बनाता है । यहाँ 'रंग बिरंगी' नाम की सार्थकता सिध्द होती है । यह फिल्म खुशहाल जीवन की राह दिखाती है।

4.1.2.7 'उसने कहा था' का फिल्मांकन

चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की सुप्रसिध्द कहानी 'उसने कहा था' पर इसी नाम से निर्देशक मोनी भट्टाचार्य ने फिल्म बनाई । 'उसने कहा था' हिंदी की सर्वश्रेष्ठ कहानी है । यह एक विशुध्द प्रेमकहानी है । जिसमें केवल 'देने' का भाव है, 'लेने' का नहीं । सच्चा प्रेम त्याग चाहता है और इस कहानी का नायक लहनासिंह अपने बचपन की प्रेमिका सूबेदारनी के कहने पर युध्द भूमि में उसके बेटे और पति की रक्षा करते हुए अपने प्राणों का बलिदान कर देता है, क्योंकि... 'उसने कहा था' ।

कहानी पाँच भागों में विभाजित की गई है । पहला दृश्य अमृतसर के भीड़भरे बजार में बालक लहनासिंह और बालिका सूबेदारनी का आकस्मिक रूप से मिलने का और बालक का बालिका से बार-बार पूछने का कि, 'तेरी कुड़माई हो गई ?'(अर्थात-'क्या तेरी मंग्नी हो गई?') और लड़की का धत् कहकर शरमाकर भाग जाना । लेकिन एक दिन यही सवाल दोहराने पर वह हाँ हो गयी कहती है और सबूत के तौर पर.. 'देखते नहीं' यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू' । उत्तर सुनकर बालक बाजार से घर जाने तक विक्षिप्त आचरण करने का दृश्य

है। दूसरा, तीसरा और चौथा भाग युध्द क्षेत्र और युध्द जीवन से संबंधीत है । जिसमें जमादार लहनासिंह का बोधासिंह की बिमारी में सेवा करने, शत्रु के षड़यन्त्र को नाकाम करने, हजारासिंह ओर अन्य साथियों को बचाने आदि में लहनासिंह की कर्तव्य निष्ठा और कर्मठता प्रदर्शित हुई है । पाँचवा और अंतिम भाग लहनासिंह की मरणावस्था के स्मृतिचित्रों से सम्बधित है । ''कहानी के पहले भाग का मध्य के तीन भागों से तब तक कोई सम्बन्ध और तारतम्य समझ में नहीं आता, जब तक मरनासन्न लहनासिंह के स्मृति-चित्रों के सहारे पाठक कहानी के विभिन्न प्रसंगों और संदर्भों के बिखरे सूत्रों को जोड़ नहीं लेता । मरनासन्न लहनासिंह का पहला स्मृति चित्र कहानी के पहले भाग का है जिसमें बारह वर्ष के किशोर का आठ वर्ष की बालिका से मिलना, मजाक करना और आघात लगना पूर्वदिप्ती के रूप में उकेरा गया है । दूसरा स्मृति-चित्र है पच्चीस वर्ष बाद उसी बाल सखी से एक पत्नी और जवान बेटे की माँ के रूप में मुलाकात का- ''मुझे पहचाना नहीं... अमृतसर में ...।'' तीसरा स्मृति चित्र है- सुबेदारनी का आँचल पसार कर पति और पुत्र की रक्षा करने के वचन लेने का ।''[40] इन स्मृति चित्रों के माध्यम से कहानी के बिखरे सूत्रों के जुड़ जाने पर कहानी की मूल संवेदना समझ में आती है। सुबेदारनी को दिया हुआ वचन पूरा करने के लिए लहनासिंह अपनी जान पर खेल जाता है । सूबेदारनी के बेटे बोधासिंह और पति हजारासिंह की रक्षा करते समय युध्दभूमि में जर्मन दुश्मनों की गोलियों से बुरी तरह जख्मी हो जाता है । युध्द समाप्ती पर सही सलामत घर जा रहे हजारासिंह के पास वह सूबेदारनी को संदेश भेजता है कि ...''कह देना, मुझसे जो कहा था, वह मैने कर दिया''

फिल्म की कहानी में बालक नन्दू और बालिका कमली अमृतसर के बाजार में मिलते है। दोनों में शीघ्र ही प्रेम हो जाता है । कुछ दिनों तक फिल्मी अंदाज में दोनों मे इश्क चलता है, जिसमें नाच-गाना भी शामिल है । एक दिन नन्दू की माँ कमली के चाचा से दोनों की शादी के बारे में बात करती है । लेकिन कमली का चाचा नन्दू को आवारा कहकर इस रिश्ते के लिए मना कर देता है । इससे आहत होकर नन्दू जीवन में कुछ बनने के लिए फौज में भर्ती होता है, कहानी आगे बढ़ती है । एक बार जब नन्दू छुट्टी पर गाँव आता है तो उसे पता

चलता है कि कमली की शादी हो चुकी है । इस बात से नाराज होकर वह फिर अपने रेजिमेंट में लौटता है । उसके बाद नन्दू के रेजिमेंट को युध्द पर जाने का आदेश होता है । सभी सिपाही युध्द क्षेत्र में जाने से पहले अंबाला छावणी के रेलवे स्टेशन पर मिलते हैं जहाँ उनके सगे-संबंधी उन्हें विदा करने आए हुए है । विदा करनेवालों में कमली भी अपने पति हवालदार रामसिंह को अश्रूपूर्ण विदाई दे रही है । रामसिंह अपनी पत्नी को नन्दू से मिलवाता है । दोनों एक-दूसरे को तुरंत पहचान लेते हैं । यहीं पर थोड़ा एकान्त पाते ही कमली नन्दू से अपने पति की रक्षा का वचन लेती है । युध्द के मैदान में नन्दू जापानियों की गोलियों से रामसिंह की जान बचाता है और इस प्रक्रिया में खुद घातक रूप से घायल हो जाता है । नन्दू को मरनासन्न अवस्था में रामसिंह पूछता है कि ''तुमने मेरे लिए अपनी जान क्यों दी ?'' इसपर मरते-मरते नन्दू कहता है- 'उसने कहा था' ।

इस प्रकार यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि यह एक सर्वोत्तम साहित्यिक कृति पर बनाई गई एक असफल फिल्म है ''फिल्म न केवल अपने शिल्प में कहानी से बिलकुल पृथक है बल्कि उसमें कहानी का कथ्य, चरित्रांकन आदि सबकुछ बदल दिया गया है । यहाँ तक कि घटनाओं के साथ-साथ पात्रों के नाम तक बदल दिए गए हैं । फिल्म के नायक को भी सरदार न दिखाकर एक आधुनिक केश सज्जा वाले व्यक्ति के रूप में दिखाया गया है । कहानी के नायक लहनासिंह को बिना किसी ठोस सिनेमाई कारण के आवारा और चरित्रहीन दिखाना गुलेरी जी की कहानी के साथ खिलवाड़ करना है ।''[41]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है की निर्देशक की नासमझी और अयोग्यता के कारण हिंदी साहित्य की एक अमर कहानी फिल्म में आकर 'शहीद' हो गई । यह हिंदी साहित्य का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा की इतनी अच्छी कहानी का निर्देशक मोनी भट्टाचार्य ने सत्यानाश कर दिया । इसी कहानी पर अगर सत्यजित रे, श्याम बेनेगल या गोविंद निहलानी जैसे निर्देशक फिल्म बनाते तो निश्चित रूप से इसका सफल फिल्मांकन सम्भव हो पाता ।

4.1.2.8 'तीसरी कसम' का फिल्मांकन

हिंदी साहित्य के सुप्रसिध्द आँचलिक कथाकार रेणु की प्रसिध्द कहानी 'तीसरी कसम' उर्फ 'मारे गए गुलफाम' पर आधारित निर्देशक बासु भट्टाचार्य ने 'तीसरी कसम' फिल्म बनाई । इसके निर्माता थे हिंदी सिनेमा के गीतकार शैलेन्द्र ।

'तीसरी कसम' रेणु की एक उत्कृष्ट आँचलिक कहानी है । इसकी कथा इस प्रकार है- बिहार के पूर्णिया अंचल में रहनेवाला हीरामन सीधा-सादा, सच्चा, सरल गाडीवान है । उसकी उम्र चालिस साल है, शरीर हट्टा-कट्टा और रंग काला-कलूटा है । अपनी गाड़ी और बैलों के अलावा उसे दुनिया की किसी और बात में दिलचस्पी नहीं है । वह अपनी ही एक अलग दुनिया में मस्त है । एक बार अपनी गाड़ी में चोर-बाजारी का माल लादकर ले जाते समय और दूसरी बार बाँस ढ़ोने के दौरान उसे बहुत बुरा अनुभव आता है । इस कटु अनुभव के कारण वह पहली कसम खाता है कि अब गाड़ी में कभी चोर-बाजारी का माल नहीं लेकर जाएगा और दूसरी कसम खाता है कि गाड़ी पर कभी बाँस नहीं लादेगा । एक दिन स्टेशन पर हीरामन की गाड़ी में नौटंकी कंपनी में नाच-गाने का काम करनेवाली हीराबाई मेले में जाने के लिए बैठ गई । बैठते वक्त हीरामन ने उसे नहीं देखा था । यात्रा के दौरान आपस में बातें करते हुए दोनों में प्रेम हो जाता है, लेकिन दोनों भी व्यक्त नहीं करते है । मेले में पहुँचने पर हीराबाई कंपनी में जाते-जाते हीरामन को नौटंकी देखने का आमंत्रण देती है । हीरामन दोस्तों के साथ वहाँ जाता है । वहाँ हीरामन का एक व्यक्ति से हीराबाई को अपशब्द कहने पर झगड़ा हो जाता है । हीरामन, हीराबाई की बहुत इज्जत करता है । हीराबाई को भी यह बात पता है । हीराबाई की मूर्ति उसके हृदय में देवी की तरह विराजमान है । हीराबाई, हीरामन के मन में बसी उस मूर्ति को तोड़ना नहीं चाहती । अतः वह मेले की नौटंकी कंपनी छोड़कर फिर अपनी पुरानी 'मथुरा मोहन कंपनी' में लौट जाती है । रेल स्टेशन पर वह हीरामन से आखिरी बार विदाई लेती है । हीराबाई को विदा करने के बाद हीरामन अपनी गाड़ी पर आता है और 'तीसरी कसम' खाता है कि अब कभी नौटंकी कंपनी की बाई को अपनी गाड़ी में नहीं बैठाएगा।

'तीसरी कसम' रेणु की कहानी का एक सफल फिल्मांकन कहा जा सकता है । फिल्म की कथा बिलकुल वही है, जिसकी कल्पना रेणु ने अपनी कहानी में की थी । कहानी गाँव का एक भोला भाला सीधा-सादा गाड़ीवान हीरामन और नौटंकी की अदाकारा हीराबाई के अव्यक्त प्रेमसंबंध पर आधारित है । पूरी फिल्म में बिहार के पूर्णिया अंचल की संस्कृति सजीव हो उठी है । ''कहानी में बिहार के पूर्णिया अंचल का लोक सांस्कृतिक पक्ष पूर्ण सुन्दरता के साथ प्रकट हुआ है । सम्पूर्ण फिल्म लोकगीतों-बिरहा, बिदाई, नौटंकी में गाए जाने वाले गीत-संगीत से सजी हुई है । ग्रामीण अंचल की लोक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में गाड़ीवान हीरामन एवं नौटंकी में काम करनेवाली हीराबाई की अव्यक्त प्रेमकथा, इस प्रकार गुंथी हुई है कि प्रतीत होता है कि शिल्प के स्तर पर कहानी एवं कविता एकरूप हो गए है ।''[42]

फिल्म की कथा बिलकुल सरल है । देहाती भोला-भाला हीरामन जिसकी अपनी छोटी-सी दुनिया है । भैया-भौजी, भतीजी, कजरी गाय और उसके दो बछड़े । गाड़ीवानी वह कभी नहीं छोड़ सकता, वह उसकी पहली चाहत है । इसिलिए पत्नी के मर जाने पर भी वह दूसरा विवाह नहीं करता है । एक दिन रेलवे स्टेशन पर हीरामन गाड़ीवान को मेले में पहुँचाने के लिए कोई जनाना सवारी मिली है । उसने उस औरत की गाड़ी में चढ़ते समय केवल गोरी-चिकनी टांग देखी है । उसे देखा नहीं है । गाड़ी से रह-रहकर खुशबू आती है । रात का सफर है, हीरामन का मन डोल रहा है । पीठ में गुदगुदी हो रही है । हीरामन के मन में डर भी है कि कहीं 'भूत-प्रेत' न हो । परंतु जब हीराबाई को देखता है तो बोल पड़ता है -''अरे बापरे ये तो परी है ।''हीराबाई उसकी सादगी पर रीझ उठती है । सुनसान रास्तों का लंबा सफर है । रात और रास्ता कैसे कटेगा ? फिर शुरू होता है बातचीत का सिलसिला । सफर के दौरान हीरामन-हीराबाई की बातीचत में जो सरलता एवं मिठापन है, वह फिल्म को अविस्मरणीय बनाता है । हीरामन के पूछने पर आपके घर में कौन-कौन है ? हीराबाई कहती है- ''सारी दुनिया''। इसमें हीराबाई के एकाकी जीवन की त्रासदी व्यक्त हुई है । सारी दुनिया से अपनापा है पर कहीं भी कोई अपना नहीं जमाने में, न आशियाने के बाहर न आशियाने में।

टप्पर गाड़ी तीगाछिया पहुँचती है । यहीं से शुरू होती है महुआ घटवारिन की कथा । यह इस फिल्म की अंतर कथा है । हीरामन घाट पर गाड़ी रोकता है । हीराबाई नहाने जा रही है । हीरामन हीराबाई से कहता है यहाँ कुंवारी लड़कियाँ नहीं नहाती । और वह उसे महुआ घटवारिन की कहानी बताता है । हीराबाई दूसरे घाट पर नहा रही है। हीरामन बैलों से अपने मन क बात कह रहा है- ''देखो कुंवारी भी है ।'' और फिर बैलों को सहलाते हुए शर्माना उसके मन में जाग रही उम्मीदों को बयान करता है । अब दोनों के बीच की दूरीयाँ खत्म हो चुकी है । दोनों एक-दुसरे पर यकीन करने लगे है, अधिकार जताने लगे है । हीरामन हीराबाई के रूप पर पूरी तरह रीझ गया है । हिरनी जैसी कजरारी आँखे, एड़ी तक लंबे रेशमी बाल । हीरामन महुआ घटवारिन का गीत गा रहा है । इस सबका दृश्यांकन अत्यंत प्रभावशाली है । इस तरह बातों-बातों में तीस घंटे का लंबा सफर कब खत्म होता है हीराबाई को पता ही नहीं चलता ।

हीरामन हीराबाई के मन में अंकुरित हो चुके प्रेम के बीज को मेले के दौरान फलने-फूलने का अवसर मिलता है । हीरामन-हीराबाई में परस्पर विश्वास एवं अधिकार भावना विकसित होती है । लेकिन हीराबाई अच्छी तरह से जानती है कि हीरामन के जीवन में उसका प्रवेश सम्भव नहीं है । कुछ समय के लिए उसके मन में आकांक्षा जागती है लेकिन जमींदार द्वारा अपना मोल-भाव किए जाने पर वह यथार्थ के कठोर धरातल पर आ जाती है । फिर भी वह हीरामन के हृदय में बसी अपनी मूर्ति को तोड़ना नहीं चाहती और इसलिए वह अपने शहर की नाटक कंपनी में लौटने का फैसला करती है । जाने से पहले वह हीरामन ने जो पैसे उसके पास सम्भालने के लिए रखे हुए थे उन रूपयों को लौटाती है और विदा लेते हुए कहती है - ''जी छोटा न करो हीरामन, तुमने कहा था ना कि महुआ घटवारिन को सौदागर ने खरीद लिया, मैं बिक चुकी हूँ मीता।''[43] इतना कहकर वह रेल में बैठकर चली जाती है और हीरामन मन की पीड़ा को मन में दबाकर अपने बैलों को मारने के लिए चाबुक उठाता है, कि पीछे से एक आवाज आती है ''मारो मत'' यह एक अद्‌भुत संकेत दृश्य है । हीरामन पीछे मुड़कर देख

रहा है, पीछे गाड़ी में कोई नहीं है । हीरामन कसम खा रहा है- 'तीसरी कसम', फिर कभी कंपनी की औरत को गाड़ी में नहीं बिठाएगा । यहाँ पर फिल्म समाप्त हो जाती है ।

फिल्म में उदात्त प्रेम के साथ-साथ पूर्णिया अंचल के अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों का संकेत है । जैसे-महाजनी प्रथा, जमींदारों का आतंक, स्त्री कलाकार के प्रति पुरूषवादी मानसिकता, लागों का सीधापन, मनुष्य और प्रकृति का प्रेम आदि । राजकपूर ने हीरामन के रूप में और वहीदा रहमान ने हीराबाई के रूप में अविस्मरणीय अभिनय किया है । संगीत शंकर-जयकिशन का है और उसे सूरों से सजाया है मुकेश, लता, आशा, मन्ना डे, मुबारक बेगम आदि ने । गीत लिखे है शैलेन्द्र और मजरूह सुल्तानपुरी ने । इन सभी कलाकारों की क्लासिक रचना है 'तीसरी कसम' फिल्म ! थोडी देर के लिए इसकी व्यावसायिक असफलता को अगर नजरंदाज करें तो साहित्यिक कृति पर बनी यह सर्वोत्कृष्ट फिल्म है । इसे 'तीसरी कसम' कहानी का बेहतरीन फिल्मांकन कहा जा सकता है ।

4.1.2.9 'माया दर्पण' का फिल्मांकनः

हिंदी के सुप्रसिध्द लेखक निर्मल वर्मा की कहानी 'माया दर्पण' पर इसी नाम से निर्देशक कुमार शाहानी ने फिल्म बनाई । 'माया दर्पण' में एक छोटे शहर में एक उँचे खानदान की लड़की तरण अपने पिता के साथ अपने पुश्तैनी मकान में रहती है । माँ की मृत्यु हो चुकी है । तरण अंतर्मुखी लड़की है । वह चुपचाप रहती है और अपने ही ख्यालों में डूबी रहती है । तरण की शादी के लिए जितने भी रिश्ते आते है, उसके पिता ठुकराते रहते है । क्योंकि सामाजिक हैसियत में वे सभी उन्हें अपने से नीचे लगते हैं । तरण एक मशीन की तरह घर के कामों में लगी रहती है । उसका एक भाई भी है जो असम चाय के बगान में नौकरी करता है । वह उसे खत लिखकर अपने पास आने के लिए कहता है, लेकिन अपने निरस जीवन में उलझी हुई तरण कोई निर्णय नहीं ले पाती । वह अपने मन को तसल्ली देती रहती है कि वह अपने पिता को अकेले नहीं छोड़ सकती । एक दिन शहर से एक इंजिनियर काम करने आता है । शिव को समर्पित एक नृत्य कार्यक्रम में तरण की दमित यौन इच्छाएँ

फूटकर बाहर आ जाती है और वह अपनी मुक्ति के लिए इस नौजवान से मानसिक और शारीरिक संबंध स्थापित करने का निर्णय ले लेती है ।

'माया दर्पण' कहानी के फिल्मांकन में निर्देशक ने पूरी छूट ली है । फिल्म कहानी से पूरी तरह अलग है । वह सिर्फ कहने भर के लिए निर्मल वर्मा की कहानी पर आधारित है । फिल्म पर पूरी तरह निर्देशक कुमार शाहानी की छाया है ।

4.1.2.10 'यही सच है' का फिल्मी रूपांतरण 'रजनीगंधा'

हिंदी की सुविख्यात कथाकार मन्नू भंडारी की एक महत्वपूर्ण कहानी 'यही सच है' पर निर्देशक बासु चटर्जी ने 'रजनीगंधा' फिल्म का निर्माण किया । मन्नू भंडारी की 'यही सच है' कहानी कथ्य और शिल्प दोनों में अत्यन्त मौलिक कहानी है । इसके प्रमुख पात्र है दीपा, संजय और निशीथ । इस कहानी में एक ऐसी नारी का चित्रण किया है जो भावना के धरातल पर दो पुरूषों से प्यार करती है । दो प्रेमियों में से किसी एक का चुनाव करना है । एक ओर अतीत का प्रेमी है और दूसरी ओर वर्तमान का प्रेमी । संजय वर्तमान का प्रेमी है और निशीथ अतीत का प्रेमी । संजय और दीपा एक दूसरे से प्यार करते हैं । उनके दिन मजे में कट रहे हैं। दीपा ने अपने भूतपूर्व प्रेमी निशीथ के बारे में संजय को जानकारी दी है, और अब वह उससे नफरत करती है । कभी-कभार निशीथ की बात छेड़कर संजय दीपा को चिढ़ाता है । इस बीच दीपा को कलकत्ता से नौकरी के लिए इंटरव्यू की कॉल आती है । निशीथ कलकत्ता में ही होने के कारण संजय नौकरी पाने हेतु दीपा को उसकी मदद लेने की बात कहता है । दीपा इंटरव्यू देने के लिए कलकत्ता जाती है और वहाँ पर अपनी सहेली 'इरा' के घर में ठहरती है । संयोगवश उसकी मुलाकात वहाँ निशीथ से होती है । दोनों का प्रेमसंबंध खत्म हुए अब तीन वर्ष से ज्यादा समय हो गया है । लेकिन जब दीपा निशीथ को सामने पाती है तो उसकी खस्ता हालत देखकर उसे चिंता होने लगती है । उसने अब तक शादी भी नहीं की है । निशीथ को जब पता चलता है कि दीपा नौकरी पाने के लिए आयी है तो वह अपनी जान-पहचान लगाकर उसकी सिफारिश करता है ।

दीपा का इंटरव्यू अच्छा होता है तो निशीथ बहुत खुश होता है । अपने लिए इतना प्रयास करते देखकर और उसका सामीप्य पाकर दीपा के हृदय में फिर पुराना प्रेम अंगडाइयाँ लेने लगता है । वह निशीथ के साथ बिताये हुए पलों को याद करने लगती हैं । वह निशीथ के साथ घूमती-फिरती है तो फिर उसे प्रेम होने लगता है । वह अपने आप पर नियंत्रण नहीं कर सकती संजय के बारे में बताना चाहकर भी वह कुछ नहीं बता पाती । मन-ही-मन उसे लगता है कि वह संजय से नहीं तो निशीथ से प्रेम करती है । कलकत्ता में काफी समय गुजारने पर भी दीपा निशीथ से ना कुछ कह पाती है और ना निशीथ कुछ कहता है । रेल स्टेशन पर दीपा को विदा करते समय भी वह कुछ नहीं कहता । दीपा पर तब तक निशीथ का प्रेम पूरी तरह से हावी हो जाता है । लौटकर वह तुरंत निशीथ को पत्र लिखती है जिसमें वह अपनी भावनाएँ उजागर करती है । कई दिनों के इंतजार के बाद निशीथ का जवाबी पत्र आता है जिसमें दीपा के नौकरी लगने की बधाई होती है और कुछ नहीं । वह पत्र को लेकर असमंजस में पड़ी होती है इतने में संजय वापिस आ जाता है । संजय को देखते ही दीपा के सब्र का बांध टूट जाता है और उसके गले से लिपटकर रोने लगती है । उसको इस बात का अहसास हो जाता है कि यही सच है कि वह सिर्फ संजय से प्यार करती है, बाकी सब झूठ है।

'यही सच है' एक मनोवैज्ञानिक कहानी है । अधिकांश कहानी दीपा के मन कें भीतर घटित हो रही है । इस तरह की कहानी पर फिल्म बनाना किसी भी निर्देशक के लिए एक चुनौति भरा कार्य होता है । लेकिन बासु चटर्जी ने यह चुनौती स्वीकार की और इस कहानी पर 'रजनीगंधा' यह सफल फिल्म बनाई । दीपा के मन के अंतर्द्वन्द्व को बासु चटर्जी ने बहुत ही प्रभावशाली ढंग से फिल्माया है । कलाकारों का अभिनय सहज स्वाभाविक है । फिल्म रंगीन होने के कारण आकर्षक लगती हैं । फिल्म के गीतों को अच्छी तरह फिल्माया गया है जिसके कारण वह यथार्थवादी लगते है । फिल्म के गीत भी काफी लोकप्रिय हुए ।

'रजनीगंधा' फिल्म नव सिनेमा आंदोलन की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि कही जा सकती है । फिल्म व्यावसायिक न होते हुए भी दर्शकों का भरपूर प्यार उसे मिला । कुल मिलाकर

‘रजनीगंधा’ फिल्म मन्नू भंडारी की कहानी ‘यही सच है’ का सफल फिल्मांकन कहा जा सकता है । दीपा और इरा के बीच के ‘लेस्बीयन टच’ के संवाद को अगर छोड़ दे तो कहानी लेखिका मन्नू जी भी इस फिल्मांकन से काफी खुश थी ।

4.1.2.11 ‘तिरिया चरित्तर’ पर आधारित फिल्म ‘त्रिया चरित्र’

कहानीकार शिवमूर्ति की कहानी ‘तिरिया चरित्तर’ पर प्रसिध्द निर्देशक बासु चटर्जी ने ‘त्रिया चरित्र’ फिल्म बनाई । लेकिन यह कहानी का अच्छा फिल्मांकन नहीं कहा जा सकता । बासु चटर्जी कहानी की आत्मा को पकड़ने में असफल रहे है । कहानी सामाजिक सरोकारों को लेकर चलती है, सामाजिक सवाल खड़ा करती है, लेकिन उसपर बनी फिल्म एक गाँव की घरेलू कहानी बनकर रह जाती है । फिल्म में न तो ईंट भट्टे का वातावरण विश्वसनीय लगता है और न ही गाँव का परिवेश, जहाँ नायिका अमानवीय अत्याचारों का शिकार होती है । वह गाँव कम और द्वीप अधिक प्रतीत होता है, इसलिए फिल्म में कहानी के सामाजिक सरोकार उभर ही नहीं पाए है । फिल्म शुरू से ही कहानी से हटने और कटने लगती है । “केवल कहानी की कथा को ले लेना और चरित्रों के नाम वही रख देना भर कहानी का फिल्मांकन नहीं है । बासु चटर्जी ने शायद कैमरे की आँख से कहानी के बाह्य को ही देखा है, उसके अंतर को नहीं इसलिए यह फिल्म ‘तिरिया चरित्तर’ का शरीर भर है, उसकी आत्मा नहीं ।”[44] स्वयं कथाकार ने इस फिल्म पर आपत्ति की थी । कहानी में जो गहरा संवेदनशील सामाजिक सरोकार मिलता है, वह फिल्म में नहीं मिलता है ।

4.1.2.12 ‘पतंग’ का फिल्मांकन

निर्देशक गौतम घोष की शबाना आजमी, शफीक सईद, शत्रुघ्न सिन्हा, ओम पुरी अभिनीत यह फिल्म संजय सहाय की कहानी ‘पतंग’ पर आधारित है । ‘पतंग’ फिल्म उन असहाय लोगों की कथा है जो समाज के असमानतापूर्ण साँचे में पिसते हुए अदृश्य डोर में बंधे पतंग की तरह यहाँ-वहाँ भटकते रहते हैं । यह एक मर्मस्पर्शी फिल्म है । इसका सम्पूर्ण कथानक एक ही रेलवे स्टेशन पर घटित होता है ।

4.1.2.13 'एक और पंचवटी' पर आधारित फिल्म 'पंचवटी'

बासु भट्टायार्च द्वारा निर्देशित कुसुम अंसल की कथा 'एक और पंचवटी' पर आधारित इस फिल्म में चार प्रमुख पात्रों के आस-पास ही पूरा घटनाक्रम बुना हुआ है, साध्वी, विक्रम, जतिन और नीरा । साध्वी एक कलाकार है । विक्रम उसकी पेंटींग तथा गहरी समझ से प्रभावित होकर अपेन छोटे भाई से उसका विवाह करवा देता है । विवाह के पश्चात् जतिन और साध्वी के मध्य वैचारिक मतभेद उजागर होते है, वह उसकी भावनाओ के प्रति बेहद क्रूर होता चला जाता है और एक दिन साध्वी वापस अपनी दुनिया में लौट जाती है। विक्रम उसे समझाने जाता है और पाता है कि उसमें और साध्वी में काफी समानताएँ है । साध्वी विक्रम के दो बच्चों को जन्म देती है और जतिन के आने पर सम्बन्ध समाप्ति की घोषणा कर देती है ।

4.1.2.14 'सतह से उठता आदमी' का फिल्मांकन

मुक्तिबोध की कहानी 'सतह से उठता आदमी' पर आधारित उसी नाम की फिल्म का निर्माण निर्देशक मणि कौल ने किया । इस कहानी में पूँजीवाद के दो रूप हमें देखने के लिए मिलते हैं । एक का प्रतिनिधित्व रामनारायण करता है और दूसरे का कृष्णस्वरूप रामनारायण अमीर परिवार से है तो कृष्णस्वरूप मध्यवर्गीय परिवार से संबंधित है । रामनारायण अपने पास सबकुछ होते हुए भी उससे दूर भागना चाहता है । और कृष्णस्वरूप अपनी गरीबी और अभाव के गुण गाता है लेकिन उसके मन में अमीर बनने की ललक है । कृष्णस्वरूप रामनारायण के संपर्क में आने पर अमीर बनने का उसका सपना रामनारायण की माँ के माध्यम से पूरा होता है। माँ-बेटे में पटती नहीं है, उसका लाभ कृष्णस्वरूप उठाता है । इस प्रकार रामनारायण अपने पूँजिपति वर्ग का विरोध करता है तो कृष्णस्वरूप अवसर मिलते ही पूँजिपति बन जाता है। अपने आदर्शों का गला घोटने में झिझकता नहीं । ''मुक्तिबोध की यह कहानी एक अत्यंत यथार्थवादी कहानी है जो आधुनिक पूँजीवादी समाज के यथार्थ को बहुत प्रभावशाली ढंग से उद्घाटित करती है ।''[45]

मुक्तिबोध की कहानी और उसपर बनी फिल्म में बहुत कम समानता दिखाई देती है । मणि कौल एक प्रयोगधर्मी फिल्मकार हे और उनकी यह फिल्म भी प्रयोगात्मक है । फिल्म में कथा तत्व केवल नाम के लिए है । निर्देशक ने कहानी के दो मुख्य पात्रों के अलावा और तीन नए पात्रों की सृष्टि फिल्म में की है । फिल्म में कहानी बहुत ही संक्षेप में ली गई है । फिल्म में कहानी के पात्रों का स्वरूप बदल दिया गया है । फिल्म में पात्र मूल कहानी से भिन्न नजर आते हैं । फिल्म में मुक्तिबोध की कविता, निबंध का पाठ कराया गया है । जो कहानी से मेल नहीं खाता । फिल्म के दृश्य भी काफी जटिल होने के कारण उसमें सम्प्रेषणीयता खत्म हो गई है । ये दृश्य दर्शक के लिए सिरदर्द का करण बन गए है ।

अतः 'सतह से उठता आदमी' यह फिल्म मुक्तिबोध की कहानी का अच्छा फिल्मांकन नहीं कहा जा सकता । मणि कौल ने मुक्तिबोध की इस प्रसिध्द कहानी को केवल अपने सिनेमाई प्रयोग का साधन बनाया । जिस कारण कहानी की मूल संवेदना को ठेस पहुँची है ।

4.1.2.15 'फाल्गुन की एक उपकथा' पर बनी फिल्म 'अनवर'

मनीष झा द्वारा निर्देशित फिल्म 'अनवर' कहानीकार प्रियंवद की कहानी 'फाल्गुन की एक उपकथा' पर बनी है । 'अनवर'की मुख्य भूमिकाओ में मनिषा कोईराला, विनोद पाण्डेय, सिध्दार्थ कोईराला और नौहीद सायरूसी हैं ।

इस फिल्म का नायक अनवर लखनऊ का मध्यवर्गीय मुस्लिम युवक है । उसका मेहरू नाम की एक लड़की के प्रति झुकाव है, जो उसके हिंदू दोस्त उदित से प्रेम करती है । मेहरू-उदित घर से भाग जाते हैं । अपने धर्म और समाज के कट्टरपन, मुस्लिम लड़की का हिंदू लड़के के साथ घर से भाग जाने का परिणाम जानते हुए भी अनवर 'युध्द और प्रेम में सब जायज' हैं। कि तरह मुखबिरी करता है । परिणमतः उदित की हत्या हो जाती है और मेहरू भी आत्महत्या कर लेती है । मेहरू में मीरा को खोजने वाला अनवर हताशा, पश्चाताप, दुःख और आत्मग्लानी में घर छोड़कर अनजानी यात्रा पर निकल जाता है । अनजाने स्थान पर बस से उतर कर वह एक प्राचीन खण्डहरनुमा हिंदू मंदिर के गर्भगृह में सो जाता है । गलती से

उसका झोला बाहर रह जाता है, जिसे नमाज के वक्त एक हिंदू बच्चा ले भागता है । जिसकी तरफ अनवर का ध्यान तक नहीं जाता है । देर सुबह जब आँख खुलती है तो वह पाता है कि बाहर से आनेवाली आवाजें उसे 'आतंकवादी' घोषित कर चुकी होती है । इसका प्रमाण है झोले में निकलने वाली मंदिर की ड्राइंग्स और कुछ नोट्स जिस पर लिखा हुआ है, राधा, कृष्ण, मेहरू, पाशा आदि । बस यही से फिल्म शुरू होती है और हिंदूवादी ताकतें अपने प्राचीन खण्डहर मंदिर की पवित्रता को बचाने के लिए जुट जाती है । अनवर के 'आतंकवादी' होने के पक्के सबूत नहीं होने के बावजूद उसके बहाने मुस्लिम समाज को नेस्तनाबूत कर दिये जाने के राजनीतिक-धार्मिक प्रण के साथ अनेक उपकथाओं से गुजरती है । फिल्म वर्तमान और फ्लैशबैक के सुंदर संयोजन में दिखती-बहती जाती है । ''यह फिल्म भारतीय समाज की संरचना और दुनिया भर में मुस्लिम वर्ग विशेष की जिस तरह की 'कुख्यात पहचान' थोपी गयी है, उसके विरूध्द एक बयान की तरह दर्ज होती है ।''[46]

4.1.2.16 'मोहनदास' का फिल्मांकन

कथाकार उदय प्रकाश की कहानी 'मोहनदास' पर आधारित फिल्मकार मजहर कामरान ने इसी नाम से फिल्म बनाई । नकुल वैद्य, सोनाली कुलकर्णी और सुशांत सिंह अभिनीत 'मोहनदास' एक एसे होनहार युवा की कहानी है जो अभावों में पल बढ़कर उँची शिक्षा हासिल करता है और नौकरी भी पा जाता है । पर उसे नियुक्ति पत्र नहीं मिलता । नियुक्ति पत्र के इंतजार में वह परिवार को पालने के लिए टोकरियाँ तक बेचता है । बाद में पता चलता है कि उसकी नौकरी पर दूसरा कोई 'मोहनदास' बनकर नौकरी कर रहा है । असली मोहनदास अपने आपको असली सिध्द करने के लिए संघर्ष करता है । जब वह माइंस के दफ्तर में पहुँचकर विरोध करता है तो उसे मार कर भगा दिया जाता है । उसके बाद भी उसका संघर्ष जारी रहता है । ''मध्य प्रदेश के अनूपपुर जिले की कोयला खदान क्षेत्र की पृष्ठभूमि वाली इस फिल्म में दिल्ली के एक मीडिया चैनल के पत्रकार की रिपोर्टिंग के मार्फत कहानी कही गयी है ।''[47]

4.1.3 हिंदी नाटकों पर आधारित हिंदी फिल्में

हिंदी की नाटक विधा काफी समृध्द है । 'नाटक' और 'फिल्म विधा' में साहित्य की अन्य विधा की अपेक्षा उपरी तौर पर ज्यादा समानता नजर आती है, लेकिन फिर भी केवल तीन ही हिंदी नाटकों का फिल्मांकन किया गया है । इससे समझ में आता है कि हिंदी फिल्म निर्देशक 'नाटक विधा' से कतराते है या फिर नाटकों को फिल्म के लिए अनुकूल नहीं मानते। कारण चाहे जो हो लेकिन इसपर सोचने की जरूरत है । हिंदी नाटकों पर फिल्मों की चर्चा हम यहाँ करेंगे ।

4.1.3.1 'भाग्यचक्र' पर आधरित फिल्म 'धूपछाँव'

निर्देशक नितिन बोस ने पं.सुदर्शन के नाटक 'भाग्यचक्र' पर 'धूपछाँव' नाम से फिल्म बनाई । इस नाटक व फिल्मे दोनों के कथानक का संबंध भाग्य के निर्मम उतार चढ़ाव में पड़े हुए एक परिवार से है । 'भाग्यचक्र' का कथानक उत्कृष्ट है लेकिन फिल्म में नाटकीयता साफ झलकती है, इसलिए उसका प्रभाव कम हुआ है । 'धूपछाँव' एक घटनाप्रधान फिल्म थी । फिल्म की कहानी कुछ इस प्रकार की थी की श्यामलाल अपने बड़े भाई हीरालाल के बेटे का अपहरण करता है । उसके पीछे उसकी मंशा ये है कि हीरालाल की जायदाद में उसे बड़ा हिस्सा मिल सके । दीपक को एक अंधा गायक सूरदास बड़ा करता है । दीपक बड़ा होकर रूपकुमारी से प्यार कने लगता है । अपने माँ-बाप का पता न होने के कारण दीपक रूपकुमारी को लेकर भाग जाता है । हीरालाल जासूसों के जरिए उसको ढूँढ़ने लगता है । इसी बीच एक दुर्घटना में दीपक अपनी याददाश्त खो देता है । जब उसकी याददाश्त वापस आती है तब वह अपने सामने सूरदास को पाता है ।

फिल्म में आयी नाटकीयता को अगर छोड़ दे तो 'धूपछाँव' व्यावसायिक दृष्टि से एक सफल फिल्म साबित हुई । नाटक का यह अच्छा फिल्मांकन कहा जा सकता है ।

4.1.3.2 'आषाढ़ का एक दिन' का फिल्मांकन

नाटककार मोहन राकेश के बहुचर्चित नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' पर निर्देशक माणि कौल ने इसी शीर्षक से फिल्म बनाई । नाटक और फिल्म में समानता लाने का प्रयास किया गया है कि नाटक फिल्म पर पूरी तरह से हावी हो गया है । ''मणि कौल ने फिल्म को इस प्रकार बनाया है, जैसे वे किसी नाटक को शूट कर रहे है । 'आषाढ़ का एक दिन' को सच्चे अर्थों में फिचर फिल्म न कहकर फोटो प्ले या फिल्मांकित नाटक कहना अधिक उपयुक्त होगा। कम-से-कम उपरी दृष्टि से देखने पर तो ऐसा ही लगता है ।''[48]

निर्देशक ने नाटक में कोई परिवर्तन नहीं किया उसे 'अँज इट इज' पर्दे पर प्रस्तुत किया करने का प्रयास किया है । इस दृष्टि से देखा जाए तो इस फिल्म को नाटक का सफल फिल्मांकन माना जा सकता है । लेकिन 'आषाढ़ का एक दिन' फिल्म व्यावसायिक दृष्टि से एक असफल फिल्म साबित हुई । लेकिन फिल्म समीक्षकों ने इस फिल्म को काफी सराहा । मणि कौल का यह प्रयोग भले ही व्यावसायिक दृष्टि से असफल रहा हो, मगर इससे फिल्म का कलात्मक मूल्य कम नहीं हो सकता ।

4.2 निष्कर्ष :

हिंदी साहित्यकृतियों पर निर्मित होनेवाली फिल्मों को अगर हम देखें तो पाते है कि 'कहानी' फिल्म रूपांतरण में बहुत कुछ परिवर्तित हो जाती है । साहित्य और सिनेमा दो अलग माध्यम है । जब साहित्य माध्यम फिल्म माध्यम में रूपांतरित होता है तो उसमें परिवर्तन अवश्यम्भावी हो जाता है । किसी साहित्यकृति पर फिल्म बनाने की पहली शर्त यह है कि मूल कृति में परिवर्तन करना ही पड़ता है । अगर नहीं करेंगे तो उस कृति का सफल फिल्मांकन नहीं हो सकता । यह स्वभाविक भी है, क्योंकि एक कहानी को दृश्य-बिम्बों में प्रकट करते हुए कहीं-न-कहीं उसमें परिवर्तन की अपेक्षा होती है । फिल्म निर्देशक जो कि किसी साहित्यकृति पर फिल्म बनाना चाहता है उसे साहित्य और फिल्म के अलग-अलग निजी विशिष्ट स्वरूप की गहरी समझ होना जरूरी है । किसी भी साहित्यकृति पर फिल्म बनाने से पहले फिल्म निर्देशक

को उस लेखक के व्हिजन (Vision) को समझना होगा और उसे पूरी तरह से आत्मसात कर अपनी कल्पना के माध्यम से फिल्म में रूपांतरित करना होगा । तब ही किसी साहित्यिक कृति का अच्छा और सफल फिल्मांकन हो सकता है । 'सारा आकाश' रजनीगंधा, सदगति, शतरंज के खिलाड़ी, सूरज का सातवाँ घोड़ा, तमस आदि फिल्में उन फिल्म निर्देशकों के लिए मील का पत्थर, जो साहित्यकृति पर फिल्म बनाना चाहते हैं ।

इस तरह सिनेमा और साहित्य दो अलग-अलग माध्यम होते हुए भी एक-दूसरे के पूरक है । साहित्य कला जब फिल्मकला में रूपांतरित होती है तो उसमें जरूर कुछ परिवर्तन होते है लेकिन एक अच्छे फिल्मी रूपांतरण में कहानी के मूल उद्देश्य और कथ्य को सुरक्षित रखा जा सकता है । इस प्रकार साहित्य और सिनेमा की अपनी-अपनी विशेषताएँ और मर्यादाओं को मध्यनजर रखते हुए इन दो माध्यमों के संबंधों को सही ढ़ंग से परखा जाए तो बहुत बड़े जनसमुदाय को विविध साहित्यकारों की कालजयी कृतियों से परिचित करवाया जा सकता है ।

संदर्भ सूची :

1) फिल्म में भावना, बुद्धि और संवेदना का मिलाप हो-श्याम बेनेगल ('मीडिया विमर्श', दिसंबर,2013), पृ.16,17.

2) साहित्य का सिनेमाई रूपांतरण-चरणसिंह अमी ('मीडिया विमर्श', सिनेमा विशेषांक-2, मार्च,2013), पृ.59

3) हिंदी साहित्य और सिनेमा-विवेक दुबे, पृ. भूमिका से

4) वही, पृ.54, 55

5) मूल फिल्म 'डाक बंगला' से

6) मूल फिल्म 'मौसम' से

7) वही

8) साहित्य और सिनेमा के अंतर्संबंध - नीरा जलक्षत्रि, पृ.117

9) हिंदी साहित्य और सिनेमा-विवेक दुबे, पृ.106

10) वही, पृ.52

11) वही, पृ.65

12) वही, पृ.115

13) वही, पृ.129

14) वही, पृ.128

15) 'तमस'-भीष्म साहनी पृ. 'फ्लैप से'

16) फिल्म और फिल्मकार - डॉ.सी.भास्कर राव, पृ.28

17) साहित्य और सिनेमा-सं.डॉ.शैलजा भारद्वाज, पृ.285

18) साझा संस्कृति, साम्प्रदायिक आतंकवाद और हिंदी सिनेमा - जवरीमल्ल परख, पृ.70

19) जैसे समाज बदलेगा...सिनेमा भी बदलेगा-गोविंद निहलानी (जनपथ-अनन्त कुमार सिंह, अंक, जून 2013), पृ.80

20) श्याम बेनेगल - सूखना हरेपन के सपनों का - युनुस खान (सिनेमा के सौ बरस-सं.मृत्युंजय), पृ.225

21) सूरज का सातवाँ घोड़ा-धर्मवीर भारती, भूमिका-अज्ञेय, पृ.08

22) वही, पृ.09

23) वही, पृ.100

24) साहित्य और सिनेमा के अंतर्संबंध - नीरा जलक्षत्रि, पृ.106

25) भारतीय सिनेमा का अंतःकरण - विनोद दास, पृ.82

26) मूल फिल्म 'शतरंज के खिलाड़ी' से

27) वही

28) वही

29) वही

30) वही

31) हिंदी साहित्य और सिनेमा - विवेक दुबे, पृ.187

32) दलित शेष समाज बनाम सरकार - राकेश पति (मीडिया विमर्श-सिनेमा विशेषांक-3, जून,2013), पृ.85

33) भारतीय सिनेमा का अंतः करण - विनोद दास, पृ.10

34) हिंदी साहित्य और सिनेमा - विवेक दुबे, पृ.197

35) वही, पृ.130

36) वही, पृ.136

37) वही, पृ.137

38) मूल फिल्म 'रंग बिरंगी' से

39) वही

40) हिंदीः चर्चित कहानियाँ-पुनर्मूल्यांकन - डॉ.कुसुम वार्ष्णेय, पृ. 66

41) हिंदी साहित्य और सिनेमा - विवेक दुबे, पृ.62

42) साहित्य और सिनेमा के अंतर्संबंध - नीरा जलक्षत्रि, पृ.94

43) मूल फिल्म 'तीसरी कसम' से

44) फिल्म और फिल्मकार - डॉ.सी.भास्कर राव, पृ.161

45) हिंदी साहित्य और सिनेमा - विवेक दुबे, पृ.145

46) भारतीय हिंदी सिनेमा की विकास यात्रा - डॉ.देवेन्द्र नाथ सिंह, डॉ.वीरेन्द्र सिंह यादव, पृ.216

47) वही, पृ.217

48) हिंदी साहित्य और सिनेमा - विवेक दुबे, पृ.150